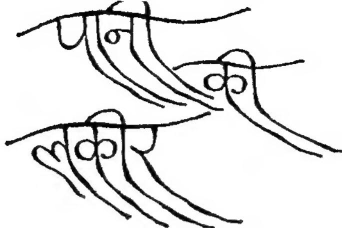

पानी की लकीर
संपादक
अमृता प्रीतम

शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए
चिन्मय प्रकाशन
चौडा रास्ता, जयपुर-302003



सम्पादक
अमृता प्रीतम

शिक्षक दिवस के अवसर पर
शिक्षा विभाग राजस्थान बीकानेर
के लिए

प्रकाशक : चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003
मुद्रक : श्री बालचन्द्र यन्त्रालय 'मानवाश्रम' दुर्गापुरा रोड, जयपुर-30201
प्रथम संस्करण ; 1980
मूल्य 9·00 रुपये
आवरण : इमरोज

PANI KI LAKIR (Kavita)
Edited by : Amrita Preetam
Price : Rs. 9 00

और हमें अपनी दाख़ली मेज़ों पर सजालें
पर एक दिन—
हम मछली के कांटे की तरह

इस संग्रह की नज़्में भी उस पानी
की [illegible] ज़िन्दगी में दबे हुए 'स्रोतों' का पता,
आज से कहीं ज़्यादा, वक़्त की प्यास का इशारा

रोष की ताक़त [illegible] की [illegible] में,
और दलील की दृढ़ता में होती है, सिर्फ़
नहीं। और ताक़त सिर्फ़ एक कला की ताक़त
से दाद हासिल होता है।

मक़सदी शायरी के मेरे विचार
को अपना माध्यम बनाता है, जो
इख़्तियार नहीं करता, वह मूल में से
होता है, पानी के सोत से

शायद, किसी भी रूप
किसी भी सोत के अस्तित्व का

के. एन. दीप [illegible]
नई दिल्ली

अनुक्रम

□

□ शशिबाला शर्मा

समझ के दायरे

ये माना कि

मेरी समझ को परम्पराओं के सर्प ने हर बार डसा है
तुम्हारा ख्याल होठों पर जब भी आन बसा है

बेशक,

मेरी मासूम मुस्कराहट ने खुशनुमा सौगातों के पैगाम
कई बार बुलाये है

और सूने मंजर मे

नशीले अहसास के दिये कई बार झिलमिलाए हैं

मगर,

हर गुहार मेरे द्वार से अनुत्तरित
चुपचाप फिर गई है

क्योंकि, हर बार मेरी आखो मे
युगीन सस्कारो की संध्या घिर गई है
फिर भी ये सच है कि
तुम्हारे चेहरे पे जड़ी ऐतिहासिक लिपि को
मैंने बड़ी हसरत से पढ़ना चाहा है
जबकि

तुमने सिर्फ शब्द माँगे हैं
और वक्त के खंडहर पर
हर शाहजहाँ की तरह
एक बुर्ज गढना चाहा है ।

●

अबूझे अहसास

दर्द के पाव नही होते,
जब आता है चुपचाप, बे आहट,
हर डर से बेखौफ, रग रग मे उतर जाता है
मेहमानियत की दरकार नही
गैर दिल को अपना ही घर समझ पसर जाता है ।

आसुओ का कोई मौसम नही होता,
मन के नीरव आकाश पर जब बे-रुत बादल छाते हैं
घटाये छिप कर क्रन्दन करती है
बिजलिया बे-आवाज कडकती है
ओठो की थरथराहट को लाज के रेशे पी लेते है
मगर कोर के पहरुये यू बे-सुध हो जाते हैं
कि बेशकीमती मोती चुपचाप निकल आते है ।

रिश्तो के नाम नही होते,
वक्त के सलीब पर जब ख्वाहिशो के मसीहा
     चुपचाप सो जाते हैं
पीढियो की परम्परा को झुठलाकर,
     रिश्ते खामोश हो जाते हैं
मगर अयाचित क्षण मे, कुछ खुशनुमा सदर्भ
अनायास ऐसे जुड जाते है
कि बे-नाम चेहरे भी युग-युग की पहचान बन जाते है



अबूझे अहसास

दर्द के पाव नही होते,
जब आता है, चुपचाप, बे आहट,
हर डर से बेखौफ, रग रग में उतर जाता है
मेहमानियत की दरकार नहीं
गैर दिल को अपना ही घर समझ पसर जाता है ।

आसुओं का कोई मौसम नहीं होता,
मन के नीरव आकाश पर जब बे-रुत बादल छाते है,
घटायें छिप कर क्रन्दन करती है
बिजलिया बे-आवाज कड़कती हैं
ओंठों की थरथराहट को लाज के रेशे पी लेते है
मगर कोर के पहरुये यूं बे-सुध हो जाते हैं
कि बेशकीमती मोती चुपचाप निकल आते है ।

रिश्तो के नाम नही होते,
वक्त के सलीब पर जब ख्वाहिशों के मसीहा
चुपचाप सो जाते है
पीढियो की परम्परा को भुठलाकर,
रिश्ते खामोश हो जाते हैं,
मगर अयाचित क्षण मे, कुछ खुशनुमा संदर्भ
अनायास ऐसे जुड़ जाते है,
कि बे-नाम चेहरे भी युग-युग की पहचान बन जाते है !



□ ब्रजभूषण भट्ट

जिन्दगी : अंगारा

आज
मानव-जिन्दगी
एक दहकता अंगारा है,
जो
पल-पल जल-जलकर
दूसरों की रोटी सेंकता रहता है,
और जब
वह खाक हो जाता है, राख बन जाता है
तो
उससे जूठे बर्तन मांज लिये जाते हैं।



आम : आदमी

आज
आम आदमी
आम की तरह है,
जिसे
रईस चूसकर फेंक देते हैं,
और
गुठलियों को जमीन में गाड़ देते हैं,
जिससे
फिर और आमों को चूसा जा सके।



☐ सांवर दइया

चाकू की नोक पर

वैसे उसके वसन्त को
वसन्त कहना गलत होगा
क्योंकि
उसने न तो
हरे-भरे गदराये वृक्ष देखे
न फल चखे
न सूंघे फूल
न चिड़िया चहचहायी
न फूटी कोई गन्ध ही वहां
लेकिन श्रीमान् !
वर्ष की एक खास ऋतु का नाम
वसन्त है
अतः हे सभ्य जनो !
(आपके लिए यह सम्बोधन मेरा है उसका नहीं)
वसन्त की बीस खाइयां फांदकर
इस बाग को,
ठहरिये
इसे बाग की जगह
जंगल कहना अधिक उपयुक्त होगा,
(वह तो जंगल ही कहता है इसे)
हां, तो इस जंगल को
समझने लायक हुआ है
जब से वह

तब से
वह हर बात का फैसला
चाकू की नोक पर चाहता है !

●

जन-जन को लगे—
मेरा हर आखर अक्षत

दर्द की यह यात्रा
चलती रहे अनवरत
भीतर से बाहर
बाहर से भीतर

इस यात्रा में
मैं मील का पत्थर
बनूं / न बनूं
लेकिन
सजग यात्री अवश्य बना रहूं।

मील के हर पत्थर को
पीछे छोडता
उस छोर तक जा पहुंचूं
जिसके आगे
मील का कोई पत्थर न हो!



बाल वर्षोपरात एक सन्दर्भ

जब मैं
अपने बूढ़े और बीमार पिता के लिए
मुसम्मी का रस निकाल रहा था
मेरे बच्चे बोले मुझ से—
पापा ! हम भी फल खायेंगे

मैंने उन्हें
फल के बदले डांट दी—
अब कुछ बोले तो
छड़ी तैयार है
इतना तो सोचो —
बाबा बीमार हैं
उन्हें रस की दरकार है !

सुनकर बोले वे —
अच्छी बात है
हम भी बीमार हो जाये गे
तब तो आप
फल खिलायेंगे !

साप की तरह
फन उठाये खड़ा है प्रश्न
और
हवा में झूल रही है हरामखोर चुप्पी !



□ पुष्पलता कश्यप

स्थितिप्रज्ञ

टूटन और मायूसी विस्तार पा कर
बिखर-छितर कर शांत हो गई है
रोशनदान से उतरते हुए प्रकाश के 'पैचेज'
बदन पर प्रकीर्ण होकर भी
किसी भी अक्स को पूरी तरह नहीं उभार पाते
मेरी आंखों में यह कैसा सन्नाटा जन्म ले रहा है.....

कोण और समय की भिन्नता को
मैं क्या समझूं, जानूं ?
अल्पतम दूरी के बीच की रिक्तता
घनत्व के हल्केपन का अहसास करा कर रह गई है
इस विशिष्ट उलझाव का
निर्णयात्मक 'रेस्पांस'.... ?

तैरती आवारा मुस्कराहटें या गमगीन उदासियां
बचाव का प्रयास हैं
चाबियों को खोकर
सन्देहों की नजरों के बीच
हम अपने 'ऑब्जेक्ट्स' से जूझ रहे हैं

आतङ्क से रुक कर,
थम कर,
प्रतिचेष्टायें अंडे पैदा करने लगी

प्रातःकालीन पारदर्शी, सुन्नी अंगड़ाइयां

अब कहाँ है ?
तीखे सूरज का बोझिल लबादा
सम्भवत् तनकर
तार-तार कर रहा है,
थकान वही की वही
खड़ी हुई तिलमिला रही है

केवल टुकड़ों में बटी हुई
सबसे छोटी विभाजित रेखा के नीचे
थोड़ा-सा
कुछ गरम है।



अपने उद्देश्य के लिए

एशट्रे में इकट्ठे हुए सिगरेट के ठूंठों को
चुपचाप गिनने की कोशिश में
वह समय के गुच्छों में उलझी अनेक आकृतियां देख रहा है
आखों में कोई कैमरा-लेंस फिट है ?
या किसी सांप की आंखों की याददाश्त उसमें घुस गई ?
गीली लकड़ी की तरह सुलग रहा है वह

खुशियां जो कभी वाचाल और अल्हड थीं
उसकी अन्तड़ियों के उलझाव में खुब कर
बुदबुदों के बीच ठण्डी हो रही हैं

शीशाई-दीवार के उधर वह है
अब मैं उससे उसके जिस्म को अलग करूंगी
पूर्ण जिज्ञासा के साथ देखूंगी
उसका दुःख मेरी शक्ल से कितना मिलता है !
जज्बात के रेशों के बीच जो अभीष्ट था
कांटों, पत्तों, टहनियों, डंठलों ने उसे कितना ढक लिया है ?
यूं क्या, शोर करो, चीखो, रोओ और हंसो, दोस्त,
गुस्से को, आक्रोश को पीना अस्वस्थता है
यह पर्यावरण हमारा क्या लेता है ?
अकेले तो पहले भी थे, अब भी हैं
तन्हाइयों के बीच जीने वालों के लिए
मुस्कराहट के अनुवाद के कुछ मायने हैं

तुम भूल गये हो, दोस्त !
बहुत सोचकर ही इस महावात्याचक्र को घूरने, ताकने
और समझने का पेशा अख्तियार किया था हमने
और अब यहां समझौते के लिए कोई भी नहीं है।



सुर्खियाँ

आदमियत के कई हिस्से हैं
कई हिस्से मर चुके हैं
कई हिस्से जी रहे हैं :

नेताजी युवक अधिवेशन में भाग लेने आये
और पांच करोड़ रुपया खर्च हो गया

आठ वर्ष का शैशव
जुआरियों और शराबियों के बीच
पापड़ और मूंगफली बेचकर
घर पर दो किलो आटा लाया

स्टोव के पिन, अगरबत्ती और माचिस बेचती हुई
उसकी गरीब मां अपना जिस्म भी बेचती है

हीरो ने "गरीबी" फिल्म के लिए बीस लाख रुपया ले लिया
और खतरे के सीन में डुप्लीकेट ने
अपनी जान गवा दी

उसे एक हजार रुपया दिया जाने वाला था
इसी फिल्म के गीतकार ने बारह पंक्ति के एक गीत
के लिए छः हजार की और विलायती शराब की मांग की

कवि ने अपना सब कुछ दांव पर लगा कर
पचास श्रेष्ठ-साहित्यिक मूल्यों का कविता-संकलन स्वयं छपाया
और छः वर्ष में तीन रुपये मूल्य की वह
पच्चीस प्रतियां बेच पाया

सिनेमा में पांच रुपये का टिकिट
आज पच्चीस में बिक गया

भतीजी की शादी मे नेकलेस
प्रजेन्ट देने के चक्कर मे
हैड क्लर्क रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया
और बाद मे जमानत पर छूट गया

बूढे ने दिन भर मे तीस अखबार वेचकर
सवा रुपया कमाया
माचिस और बीडी का वण्डल लेकर
और दो कप चाय पीकर वह घर लौट गया

भिखारी ने पचास पैसे के झगडे को लेकर
साथी के पेट मे छुरा भोक दिया

बकरी के बच्चे और रमेश का
जन्म एक दिन हुआ था
और आज
रमेश की पहली वर्षगाठ पर
बकरी के बच्चे की बोटिया
देग पर चढ गईं

वह पूरी जिन्दगी मुकदमे लडता रहा
और दस मकान उसके नाम हो गये

सोने के तावीज को छीन कर
एक विक्षिप्त आदमी ने
एक बेकसूर को कुएँ मे डाल दिया

आदमियत के कई हिस्से है
कई हिस्से मर चुके है
कई हिस्से जी रहे है।



□ शिव 'मृदुल'

छोटे से बड़ा

जब मैं
छोटा था
जिन्दगी
'मुन्नी' थी
बड़ा हुआ
जिन्दगी
'मून्नी' हो गयी
अन्तर
कुछ नहीं आया
बड़ा होने के साथ
'उ' की मात्रा
बड़ी हो गई ।



□ चतुर कोठारी

तूफान

समुद्र मे
अब, चाहे कितने ही
तूफान क्यो न आएं
पर
इन बत्तीस वर्षों में
हम अच्छी तरह
सब समझ गये हैं कि
ये तूफान असली नही
नकली है ।

ये
लम्बे समय तक
टिकने वाले नही है ।

इनसे
किनारे पर बसी बस्तियो के
नष्ट होने का
कोई डर नही है ।
इन तूफानो को
पैदा करने वाले
नाविक भी तो
इसी समुद्र मे है ।
उनकी नावें भी तो
लगर डाले खडी हैं

फिर तुम
नारे और घोषणाओं की
कितनी ही
गर्जनाएँ क्यों न करो,
हम तुम्हारी असलियत को
जानते हैं
इसीलिये अभी चुप हैं
समय पर
वोट के हथियार से
तुम्हारी नाव में
छेद कर जाएंगे
और तब
तुम्हारी नाव को
समय के तूफान में छोड़
आगे बढ़ जाएंगे ।



□ अमरसिंह पांडेय

महाभिनिष्क्रमण !

उस दिन एक दुर्घटना हो गयी
राज महलो से निकल कर
कविता कही चली गयी
और जब 'दुनिया" जागी
तो
जितने मु ह उतनी ही बाते थी
एक सज्जन कहने लगे—
मैंने उसे खेतो की ओर जाते हुए
देखा था,
पसीने से तर किसानो के बीच।
एक अन्य व्यक्ति बोला–
"भई मैंने तो उसे
मिल के मजदूरो से
घुल-घुल कर बाते करते देखा था।"
दूसरी तरफ से आवाज आयी–
"मैंने तो उसे अधी
और गदी गलियो मे भटकते देखा था।"
एक महानुभाव बोले–
' मैने कविता को
राजमहल छोड कर
सडक पर आकर
'आम-आदमी' की भीड मे

को जाते हुए देखा था।"
इतने में
एक धवल केश भद्र बोले—
'लगता है कविता
कहीं-न-कहीं भटक अवश्य गयी है।
इतने सारे लोगों के 'सम्पर्क' में आकर
उसका "सतीत्व" क्या रहेगा ?
वह 'जाति-भ्रष्ट' 'लक्षण हीन'
और कि 'वर्णं' हो गयी है
उसकी 'सरसता' हिरा गयी है,
उसके 'वृत्त' की बात करना व्यर्थ है
उसके आभिजात्य के "आभूषण"
छिन गये हैं
वस्तुतः वह अकविता" हो गयी है।"



सन्दर्भ—जदपि सुजाति, सुलच्छनी, सुबरन सरस, सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित॥—केशव

□ चैनाराम शर्मा

क्यू में लग जाइये

आइये,
क्यू मे लग जाइये।
बरसों पुरानी ठिठराव की स्थितियां
समेटते हुए चले आइये !
क्यू में लग जाइये !

आपकी इज्जत और शान के लिए
रोटी, कपड़ा और मकान के लिए
हमने बराबर आपका आह्वान किया है
आपकी अहमियत का बीड़ा अपने कंधों पर लियाहै
आप बेधड़क हो, तालियां बजाइये
क्यू में चले आइये।

यह क्यू आपकी अपनी है
और आप ही के लिए
इसे बनाये रखिये, न तोड़िये
हम इसी के बल पर
विगत कई वर्षों से जूझ रहे हैं
और आपकी छोटी-बड़ी हर समस्या को
बूझ रहे है।
हमारे हाथ के इशारे पर ही
चुपचाप खड़े हो जाइये।
और क्यू में लग जाइये ।

आप अपने को क्यू से जोड़िये !
अनुशासन मत तोडिये !
अनुशासन एक पर्व है

इसी पर हमें गर्व है
हम विश्वास दिलाते हैं कि
आने वाले कई वर्षों तक
गरीबी और भुखमरी से
सड़ते रहेंगे
और
इस यज्ञ की सुरक्षा के लिए
मरते रहेंगे ।
किसी सिरफिरे के कर्कश नारों से
आप मत हड़बड़ाइये
अपने कानों पर
अंगुली धर
इधर निकल आइये ।
और यज्ञ में लग जाइये ।



□ मगरचन्द्र दवे

परिणति

एक नाव मे
कुछ नाविक बैठे-बैठे
संलग्न हुए
हवा के विरुद्ध अभियान चलाने को . .
सभी ने कसमे खाई
वादे किए . ..
अन्त तक हवा को पराजित करने मे ..
कधे से कधा
भिडाएंगे,
दिखा देंगे दुनिया को
संगठन मे बल है ।
डूबेगे तो एक साथ
तरेंगे तो एक साथ
हवा विरोधी अभियान चला
नाव कभी आगे कभी पीछे
हिचकोले खाने लगी . .
हवा और प्रबल हुई
धीरे-धीरे एक-एक कर बोला—
अब तो हवा के मुताबिक
चलना ही बुद्धिमानी है
समय का तकाजा है .
एक नाविक, जो
नही कर सका
इन नाविको के
विचारो से समझौता

नहीं मिला तथा उनकी हां में हां
उन्हें इल्जाम लगाकर
दरिया की गोद में
समा जाना पड़ा...



यह मेरा कसूर था

यह मेरा कसूर था
कि, मैंने उस जगह
सरसों महलहाने का प्रयास किया
बार-बार करता रहा
जो भूमि पूर्णतया बंजर थी ..
फिर.. . !
कदम तो तुम्हारे भी
सही दिशा की ओर बढ़े थे . !
तुम्हें जाना था
प्रकाश का दिया जलाकर
झुग्गियों में
झोंपड़ियों में .
जहां निरा अन्धकार बसता है
गरीबी निर्वसना... !
परन्तु तुम पथ-भ्रष्ट हो गई
तुम वहां गई
जहां पहले ही
हजारों वाट के बल्ब जल रहे थे
रंग-बिरंगे . तरह तरह के
और सब मिलाकर
उड़ा रहे थे तुम्हारी खिल्ली ......

कर रहे थे उपहास
तुम्हारा
और
तुम्हारे मिट्टी के दीपक का......?

●

विडम्बना

जी चाहता है कुछ लिखूं।
और ना सही
इसी माध्यम से मन का भार
कुछ हल्का करूं—
जो अब बोझ प्रतीत होने लगा है . .
परन्तु
बात की शुरुआत कहा से
अन्त कैसे करूं ?
इसी उधेडबुन मे
विचार सावन की बदली की तरह आते हैं .
सावन के बादल बरसते है
फिर रीते होते हैं
पर, मेरे विचार
बे बरसे,
इसके पूर्व ही रीते हो जाते हैं
मेरा मन संतप्त है
वह कुछ कहना चाहता था. .

●

रामस्वरूप परेश

गजल

गुम हुई चाबी कि दराज की तरह
खुद में सिमटे सभी समाज की तरह

पल तो वक्त को गिरवी रख दिये
हैं भटकते निरर्थक आवाज की तरह

टंगे रहेंगे ये सभी सलीब पर
माने स्वार्थों की नमाज की तरह।

हाशिये में जीने के आदी हुये
दर्द दुहराते जो रियाज की तरह

द्वार की सांकल को बजाता सूरज
तुम पड़े टूटे हुए साज की तरह।



☐ कुन्दनसिंह सजल

गजल

हवा पहलू बदलने लग गई है ।
ताजगी उसमे पहले-सी नही है ।।

आँकड़े कह रहे हैं देश बदला
मगर मेरा मोहल्ला तो वही है ।।

लोग जो खोजने निकले सुबह थे
उन्हे भी साझ ललचाने लगी है ।।

गाव का रामधन भी जानता है
नई दिल्ली भी अब कितनी नई है ।।

पुराना सूर्य तो डूबा यह सच है
नये पग भी धुआ छाने लगी है ।।

शहर से सीखकर सतपाल आया
बदरो का ही वंशज आदमी है ।।

आज दक्षिण से उत्तर कह रहा था
उगे सूरज जहा पूरब वही है ।।



विष पीकर पी लूं गगा जल

मेरे बाहर की खामोशी, मेरे अतर का कोलाहल ।
ऐसे भोग रहा हू जैसे, विष पीकर पी लूं गगा जल ।।
मौन रुका अधरो के द्वारे
लेकिन मन ने पंख पसारे,

जीवन बीता प्यासा-प्यासा
इच्छाओं के बैठ किनारे।

अपनी मुधिया का सुचि सावन, उनकी विस्मृतियों का मरुथल।
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे, विष पीकर पी लूँ गंगा जल॥

भोर पपनी भीषण ज्वाला,
दोपहरी का दर्द निराला,
सपनों का सन्ध्या ने साथ मे-
तन रंग डाला मन रंग डाला

दिन दुविधाओं का दावानल, रात जैसे रमया काजल
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे, विष पीकर पी लूँ गंगा जल॥

लक्ष्य हीन हर सफर अनिश्चित
दुहरे, तिहरे पथ अपरिचित,
हमराही, हमसफर हो गये
झूठी कसमें धुले दस्तखत।

प्रतीक्षा की पीड़ा प्रतिपल, तन्हाई का पग-पग सम्बल।
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे विष पीकर पी लूँ गंगा जल॥



□ नन्दकिशोर चतुर्वेदी

कुछ नही

कहने को कुछ नही
समझ उधार ली
शब्द मागे
अक्षर खरीदे
कहने को कुछ-कुछ है
पर बोल नही
और बोल नही तो
सारा बवाल व्यर्थ
फिजूल हुये अर्थ
कहने को बहुत कुछ है
उन शर्तो ने पैदा करदी
काली अन्धी भटकन,
भटकन ने पैदा किया
बिखराव–
बिखराव से दर्द
दर्द से चिन्तन
चिन्तन से तुम और तुम्हारी
–कविता

कहने को बहुत है।
अपना अह और चेतना
सब मे थी मन की वेदना
तब बह गई
तन की,
मन की,
आखो से सरिता

धीरे-धीरे पर एक साथ
मन पंजर हृदय पटल पर,
कुछ दिनों तक
मृदुता के स्वप्न
—कविता
और अनहद नाद की कल्पना,
किन्तु छेड़ गया
समय का सूर्य
मौन तब हुये क्षण
कहं....
खोयें
तब भाग पड़ी तुम
तुम्हारी कविता
रुको : रुको रुको
नहीं नहीं नहीं
अब कहने को कुछ नहीं
सिर्फ रुदन, चीख चिल्लाहट
या मौन सिसकी भी नहीं
कुछ नहीं, कुछ नहीं।



झिंगुरों का शोर

रात को हमने
डुबोकर खड़िया के घोल में
उजला कर दिया
भाग कर अंधियारी भीड़ से
चांदनी की झलक में
प्रकाश की ललक में
बांधना चाहा था कसमसाते मनों को
कैदकर बुढ़ियाये उजालों में

तब हतप्रभ सी
दुबक गई झिंगुरों की भीड़
प्रतिध्वनियों के ढेर मे
खड़िया की कृत्रिम सफेदी में
सिमटते गये झोपड़े और नीड़

किन्तु
रहती कब तक
बंधी हुई सच्चाइयां
खड़िया घुल गई
अंधेरा बिखर गया,
हर्ष के अतिरेक में
व्याप्त है पुन. चहुँ ओर
झिंगुरो का शोर



□ श्रीनन्दन चतुर्वेदी

विनय

कृष्ण-कन्हैया
जग-जग के रखवाले
दो नम्बर के खाते
तुम्हारे हवाले।
अपना यहां क्या है?
जो दिखता, सब तुम्हारा है।
इस श्रोर झूठ तुम्हें
बचपन मे प्यारा है।
परम पिता हो तुम–
हम तुम्हारे बच्चे हैं।
अच्छा–बुरा क्या है?
पहचानने मे कच्चे है।
हम तो बालकृष्ण का
अनुकरण करते हैं।
जिन्दगी की सुख–सुविधा
लूट कर भरते हैं।
ओ काले कन्हैया!
तुम से बड़ा कौन हो
काले का रखैया?
मेरी काली पूंजी
थोड़ी और बढ़वादो।
भक्त हूं–
झोंपड़ी पर
दस मंजिल चढ़वादो
अधिक नही,

□ प्रभात 'प्रेमी'

तुम और मैं

हेड-टेल की तरह
दो पहलू हो कर भी
हम एक थे
परन्तु ! एक दिन
जहर बुझे तीर सा
तुम्हारे मे
'मैं' घुस आया
और उस दिन
तुम मर गये
फिर भी
आज तक मैं
'मैं' को गले
नही लगा पाया
और तुम्हारे
तुम बनने की चाह मे
जिन्दा हू

●

□ सावित्री परमार

हम हुए तलाश से

पगडण्डिया से
कट रहे हैं
हर सफर में हम ।

पांव हैं थके थके
क्षण रुके हुए
सांस हैं जमे–जमे
स्वर बुझे हुए

नामहीन
जी रहे हैं
हर शहर में हम ।

आंधियों में हम
कहीं तलाश में हुए
धूप गर्द ओढ़कर
पलाश से हुए

रेतकण से
चुभ रहे हैं
हर नजर में हम ।

धार से छूटे हुए
कगार से हुए
घाटियों में गूंजती
पुकार से हुए

अर्थ हीन
जुड़ रहे हैं
हर खबर से हम ।



कौन किसे कहें यहाँ

सूरज की बाहों के
जख्म बहुत गहरे हैं
धूप की निगाहों में
दर्दों के कतरे हैं।
अनचाहे क्षण मिलते
सहने की मजबूरी
दिन-दिन बढ़ती जाती
संबधों की दूरी
कौन किसे कहे यहां
भावहीन चेहरे हैं
पहचानी राहों पर
अनजाने खतरे हैं।
आंगन के ओठों पर
खामोशी सी उतरी
लगता है कोई हवा
तेजी से है गुजरी
आस पास हरदम ही
सन्नाटे ठहरे हैं
गलियां और चौराहे
लगता सब बहरे हैं।
जीवन में रंग नहीं
महक नहीं कस्तूरी
अर्चन की वेदी पर
भाव नहीं कर्पूरी
जीने के मूल्य सभी
अर्थ-हीन सकरे हैं
चिंतन के द्वारों पर
कुण्ठा के पहरे हैं।

बतियाते धूप छांव...

धई आचमन
घबराहट में
धरते मुंह अंधियारे
भोर प्रार्थना
उगते सपने
पथहीन भोर तारे।

किस्मों की
कतरनें लिये
दिन फिर गर्द के साथ
धूप-छांव
बतियाते मिलकर
पीर-दर्द के साथ

अखबारी
चेहरों की बस्ती
भीड़ भरे गलियारे
लहराते
विश्वास रौंद कर
शाख-शाख पर नारे।

लिखे हुए हैं
दीवारों पर
अस्वीकार अध्याय
सदी पढ़ रही
अपराधों के
नये-नये पर्याय

टेढ़े-मेढ़े
पैबंदों में
कैद हुए उजियारे
जीवन की
वसियत के पूरे
बदल गये अर्थ सारे।



◻ आनन्द कुरेशी

कविता

अपना हाथ
मेरी हथेली पर रख कर देखो,
या फिर मेरी आखो में
सिमट कर देखो,

एक हाथ से
दूसरे हाथ का सग,
या

एक आख से
दूसरी आख का छोर,
महज एक पल मे
पूरी जिन्दगी को,
खीच लेने मे समर्थ है।



□ दीपचन्द सुथार

उभरते चित्र

रवाना होती रेलगाड़ी को देख
हाथ हिलाकर
अभिवादन किया था
उन्हीं क्षणों में
तेरे नयनों में
गिरती बूँदों को देखा था।
लेकिन—
कमल के पत्तों पर गिरी
बूँदों की भांति
अन्तस में छितर गई।
मैं इन्द्र धनुष के रंगों में सम उभरी
चित्रावली को
खोया खोया सा
निहारता रहा।
विचारों के प्रवाह गहर
नीलाम्बर की तरह विस्तृत सिन्धु में
विचरण करता रहा
पनडुब्बी के सदृश
अन्तत
अंगुलियों को स्पर्श करते ही
विभक्त हो गई
इतस्तत बिखर गई–
लुढ़क गई।
इस तरलता कोमलता में
निहित रहस्यों को

शब्दों का अवगुंठन उठा-उठा
चन्द्र की ज्योत्स्ना मे
अन्धेरी निशा मे
तो कभी
रवि के तीव्र प्रकाश मे
अविराम खोजता रहा ।
लेकिन कारण—
बहुरूपिये की नाई
नित्य नये लिबासो मे
दृष्टिगोचर होते रहे
युगो से प्रयत्नशील हूँ
फिर भी
अद्यावधि
प्रश्नवाचक बने हुए है



राहगीर

जिन्दगी पुलिन्दा है
अरमानो और जिज्ञासाओ का
जिमका हर पन्ना
निशि-वासर
कोलतार की सडको पर
कभी रेत के टीलो पर
तो कभी—
हरी हरी मखमली दूब पर देखता हूँ ।
पी आसुओ को रहा हूँ
फिर भी
तल्लीन हूँ
हर्षित हूँ
तो कभी गमगीन हूँ
श्रान्त होकर भी

अनगिनत राहों के छोर नापे
निहारते-निहारते
छिप गये चांद व तारे
लेकिन मिली नहीं उद्गारों की कलियां
उमरी नहीं—
मधु कणों की लड़ियां
स्वप्न के कुहरे में
आच्छादित रहा
आशाओं का दामांच
कल्पनाओं की कोमल हथेलियों में—
रची नहीं मेंहदी
पर/बांसुरी ने
स्वर लहरियों को प्राण को भरा है
नन्ही-सी बूंद ने
रूप/इन्द्र धनुष को दिया है
मुक्ता को जन्म
तो/शृंगार सुन्दरियों को दिया है
पाट दो दर्द को
मरुप को विस्तार नापने दो
राहगीर हो—
निरन्तर चलते रहो



□ दुष्यन्त व्यास

जाल

अंधेरे मे तने
एक जाल काटने के बाद
लगता फिर
नया जाल बाध दिया गया है
जो पहले से ज्यादा
मजबूत है, कठोर है।
जिसमे फस गया है
क्राति का मसीहा
अब क्या हो
पहले वाला जाल दिखता तो था
यह नया जाल अजाल है
दिखते हुए भी न दिखाई देता है
ऊपर से फूल सा अन्दर से शूल-सा
और मैं
फिर दीप की प्रतीक्षा में



अब्दुल मलिक खान

लूट लिया मौसम ने

लूट लिया मौसम ने मनरंगी गाव ।
सूरज ने रपट लिखी बादल के नाव ।
पिचक गयी सरिता के पेट की उठान
अलसाई पगडण्डी, ऊंघते मचान,
फसलों की रुनझुन के ठिठक गये पाव ।
एक जून मिरच और एक जून नून
पानी के भाव चढ़ें मंहगा है चून
बाबुल का घर उजड़ा कहा मिले ठाव ।
दरक उठी भीतर की गहराती चोट,
उमड़ पड़ी जाने कब की हर खोटी खोट,
हार गया मन पापी पहला ही दाव ।
अंधियारा ब्याह गया आगन की धूप,
मदिरालय बेच रहे पूनम का रूप
सपनों की सोनचिड़ी ढूंढ रही छाव ।



कुछ देर के लिए

आओ ! बात करें उन गर्वीले पहाड़ों से
जिन्हें हमारे पुरखों की अनगिनत गाथाएं कण्ठस्थ हैं,
नापें उन लहलहाते मैदानों को
जिनका हरापन किशोरों की कामनाओं सा
दूर तक फैला है,

महसूस करें अमलतास की आब
टेसू के मन का रंगीन सैलाब
देखें पंछियों का उड़ना
और फौज सी जाती हुई चींटियों की कतार
झरने में तैरती सुनहरी मछलियां
और सुनहरी किरणों की छुवन का मजा लूटता हुआ
सरसों के खेत में खड़ा सारस का जोड़ा,
आओ, दूध सी चांदनी में
मिसरी सी हवा घोल कर पी लें
और, कुछ देर के लिए भूल जाएं इस हादसे को
कि हम बीसवीं सदी के इन्सान हैं।



□ नमोनाथ अवस्थी

पांच साल

सावधान !
यह देश कचरे का कूड़ा नहीं है
भगवान का मन्दिर है
और हम लोग इस कूड़े को ढोने वाले
मेहतर नहीं पुजारी हैं
तुम्हें अपनी दान-दक्षिणा
चढ़ाना हो तो चढ़ाओ
वरना हम पांच साल के लिए
मन्दिर का दरवाजा बन्द करते हैं।



तुम्हीं से पूछता हूं

तुमने जो दीवार रची है
उसमें कहां होकर छेद है
कि गोली निशाने पर नहीं लगती है
और सारा तूफान हवा में होकर निकल जाता है
आकाश बेहद ठंडा है
और शब्दों के कारीगर एक-एक रास्ते पर
मशीनगन लगाये बैठे हैं-
फिर भी लौह द्वारों की जंजीर चरमराती नहीं है
लगता है झंझावाती किरण
धूल उड़ाती हुई

इतिहास को धक्का देकर निकलती जा रही है
और हम सब कागज की गेंदो से
खेलने का उपक्रम किये चले जा रहे है
यह खेल कब खतम होगा
प्राचीरो की वंशबेल कहा जाकर टूटेगी
और लौहे की मजबूत तालों के किलों पर
पहरेदारी का नम्बर कब हटेगा
मैं तुम्ही से पूछता हूं
मेरे समान धर्मा-मौन
मैं तुम्ही से पूछता हू ।



□ बापू हसमुख

कविता

कैकयी ! हर युग में हुआ करती है
राम को । उसके वचन के बदले ।
हर वक्त । मिलता रहता है-
वनवास
और शहर भी तो ।
एक घना वन ही है-
जहा । जिन्दगी जीने की तमन्ना का ।
सम्पूर्ण राक्षस ।
राम से लडने को आतुर है
लेकिन इस युद्ध मे
न जाने क्यो ।
हार जाया करता है, राम-
और खो देता है / सीता को
भरपेट रोटी / और शराब के
गिलास के लिए ।
जिसके नशे मे । वह
भूल सके / अपनी सीता के
सतीत्व को उठती हुयी साडी......
और खुद को बचाने के लिए
बिक जाती है / सीता भी
मैं सोचता हू ।
लव-कुश / किसकी सन्तान है ?



□ विक्रमसिंह गुंदोज

प्रत्युत्तर

पूछते हैं लोग कि
दर्द क्या है ? कहा है ?
दर्द सिमटा है
पर्त दर पर्त
सलवट मे
मन की बगिया के
हर एक झुरमट मे
क्या बताऊ मैं
कि दर्द कहा है ?
जितनी कुरेदोगे पर्ते
एक-एक हटती जायेगी
मगर दर्द की सूरत
फिर भी नजर नही आयेगी ...



□ रमेश चन्द्र शर्मा 'इन्दु'

मानव के सन्दर्भ में

धर्म की परिभाषाओं के दायरे
रितने मौन हैं–
मानव के सन्दर्भ में ?
जिन्हें, मांगते हो उगत हैं कई प्रश्न
बबूल की तरह कटीले / रेत की तरह अतृप्त।
रात के गहन नीरव अन्धकार में–
मेरी गर्म श्वासों को छू लेना चाहता है
तुम्हारा अतृप्त वासनाओं में लिप्त मन,
जिस्म की भूख बनी रहती है–
तुम्हारी ललचाई व्याघ्र-दृष्टि में।
और–
तुम्हें यह भी ज्ञात है कि—
भोजन का अंग बनता है
मेरी चक्की का पिसा आटा,
बच्चों द्वारा लायी सब्जी और सालन।
तुम्हारे बच्चों को प्रिय लगते हैं–
मेरे लाल-लाल सौंधे महकते बेर
चाय में डालने वाली चीनी और–
थाली में सजा गुड़–
बनता है, मेरा बबुआ।
फिर–
सूरज के उजाले में डरते हो मेरी छाया से
आखिर क्यों ? क्या ?
सूरज के स्पर्श से होगई अछूत मेरी देही।
तुम्हारे भगवान का मंदिर–

जिसकी हर ईंट ने पिया है, मेरा रक्त/स्वेद
उसे भव्यता दी है–
मेरे अछूत सुहाग ने।
सब कुछ पवित्र है!
फिर कौन अपवित्र?
मैं? तुम्हारा भगवान
यह सूरज/या धर्म और तुम?



□ कमला वर्मा

निमन्त्रण वापस ले लो

मेरे आँगन में बने हुए
ओम् पर
कितनी बार कीचड़ भरे पाँव
रखे गये !
ताड़ना देते-देते
मेरा कण्ठ
राजस्थान की सूखी धरती पर–
गाया जाने वाला
करुण लोक-गीत बन गया
सुहाग के गीत गाने का
यह निमन्त्रण
वापस ले लो और
यह मेंहदी किसलिये ?
कीचड़ धोते-धोते
हथेलियाँ कठोर होकर
'थोर' बन गयी हैं–
अब तो।



□ कमर मेवाड़ी

कविता

मै अन्दर ही अन्दर घुटता रहूंगा
तुम अपना तना हुआ चेहरा लिए
दूर किसी खिड़की में बैठी
मुझे देखती रहना ।

कमरे मे बजता रहेगा रेडियो
गूंजती रहेगी मेहदी हसन की आवाज
पेंट की हुई दीवार पर फडफड़ाता रहेगा
किसी बूढे राजनेता का कलैण्डर
तुम दूर किसी खिड़की मे बैठी
मुझे देखती रहना ।

उसके बाद
जब हवा थम जायगी
कमरे मे छा जायगा एक डरपोक सन्नाटा
और फडफडाता हुआ कलैण्डर
चुप हो जायगा
तब कापता रहेगा पीपल के पत्ते की तरह
तुम्हारा दिल
तुम दूर किसी खिड़की मे बैठी
मुझे देखती रहना ।

उस वक्त
जब समय निकल जायगा हाथ से

हवा गर्म होकर सनसनाने लगेगी
पेड़ उड़ाते रहेंगे खिल्लियां
और मैं
पागलों की एक विशाल भीड़ के साथ
अपना लहूलुहान चेहरा लिए
तुम्हारे सामने से गुजर जाऊंगा।
तब तुम अपरिचित निगाहों से
दूर किसी खिड़की में बैठी
मुझे देखती रहना।



□ गिरीश विद्रोही

मेरी इच्छाएं

मेरी इच्छाए
पल–पल मे
गर्भवती होती है
कई परिभापाग्रो को
ग्राशाग्रो को
जन्म देती हैं।
मेरी इच्छाम्रो !
तुम जायज हो
तो उचित है
नाजायज हो, तो
ग्रनुचित,
ग्रपने स्तर से
नीचे गिरना
एक बुरी बात है
ऐसे बुरेपन से ग्रच्छा था
कि तुम बाँझ ही रहती।



□ फतहलाल गुर्जर

दूध किसे ?

पास ही
बगले में
एक साहब
पिला रहे थे टोमी को दूध
जिसे
देख रहा था
पड़ौसी रमजान का नन्हा बच्चा
बोला "अम्मी जान ! मुझे भी पिलाओ ना दूध" !
माँ ने दिलाया विश्वास
अपने झूठे खिलोनी
वचनों से
"हां बेटा ! कहूँगी आज ही
तेरे अब्बाजान को
लायेंगे दूध"
इतने में
भौंका टोमी
बच्चा बोला
"अम्मी ! क्या भौंकने वाले को ही
पिलाते है, साहब दूध !"



□ चुन्नीलाल भट्ट

हायकू

भूखे को जाना
भूख लगने पर
वह भूखा है।

कौन जानता है ?
कुए में पानी नहीं
पत्थर भी है।

गरीब आंसू
चिकने फर्श पर
लुढक गये।

एक बेकार
चिल्लाता रोड पर
मुझे रोटी दो।

कोक का धन्धा
काले हाथ, फिर भी
खुबसूरत।

महल से गिरा
अटका गरीब की
टूटी छत से।

●

नभोनाथ अवस्थी

मौसम तो बदलेगा

मौसम तो बदलेगा
इसे बदलने दो
पत्तों पर लिखेगा बसन्त पतझर की गाथा को
माटी पर छायेगी गंध किसी बादल की
हरियाली पानी पर तैर-तैर जायेगी
आयेगा उन्मद पल
गा-गाकर आने दो
गंध कथा बाँचेगी रचना निर्माण की
छटा छटा छायेगी नूतन आह्वाना की
रजत-मार्ग खोलेंगे
नये नव्य कक्षा में
आदि शब्द बंधन को
खुलने मुस्काने दो
मौसम तो बदलेगा, इसे बदल जाने दो।



□ भूपेन्द्र अग्रवाल

प्रतिबंध

प्रश्न बने दो–चार हरफ
खड़े हो गये
सूखे पेड़
अपनी पत्तियां झाड़ कर ।

उभरे
पपड़ाए शरीर में बहती
धमनियों के जोड़ मे
दो राहे–चौराहे
राहे राहे
दो–दो, चार–चार ।

फैल गए सनसनाते
कटगई जहाँ से देह
चीसते, चुभते, चवक्ते ।
भागे तब वे
लेकर हथियार
करते आवाज
रोको–रोको
बहने मत दो रोको

यह शब्द कोष,
यह शब्द सार
ले लो उधार ।

अर्थ मत अपना
अपने से ये

हरफ ये
जो खड़े हो गये।



नगर तुम

पहले तुम वीरान थे
 बियाबन थे
यह कहते नहीं,
हो जाते हो
सूर्य के थक जाने के साथ
थमते थमते शोर
 हलचल थमते-थमते।
हाथ बंधा समय
जब बदलता है दिन तब
तुम्हारी शिराओं के
 कोलतार में जड़े पत्थर
 उठ खड़े होते हैं
 बतियाने
सड़क की रोशनी में
 करने अट्टहास
मुस्ताती कोठियों में बन्द दरवाजों पर
मुख्य सड़क का चौराहा
फुटपाथ की कमीज पहन
 फैला देता है दो हाथ,
कुछ दूर जा बन जाता है
 दोराहा
 पगथलियां लेकर।
ओ नगर !
यदि तुम्हारे हृदय में
 अतीत की सुरंग बन जाय

हो जाए पार तो
हो सकते हो आकाश ।
पर अब
गोल-मटाल पुस्तकालय
पसरे हुए देवालय समेटे
एक सज्ञा हो
सपने से सपने तक
खोई सज्ञा
इस पर
अवसर बे अवसर
उग जाते हो !
कर लेते हो याद
अपनी सज्ञाए तो !
थोप दी जाती है ।
चुंगी चौकिया
पचायत,
मुनस्पिल्टिया,
बाट दिया जाता है विभाग
आँख-मुह
सर-गला,
हाथ-पेट,
कमर-पैर,
टुकडो-टुकडो मे दूर-दूर
करवा दिया जाता है विश्वास
सज्ञा ।
जीवित नही
मृत रहना तुम्हारी नियति है ।



□ जनकराज पारीक

आओ देखें

चलो, चलकर देखें
रधिया के घर चूल्हा जला कि नहीं
एक लम्बे अरसे से
धनिया को जिसकी चाह थी
वह गरीब रमचन्ना
दूल्हा बना कि नहीं ?
आओ देखें
शायद नूरदीन का लगान
माफ हुआ हो
धर्मदास की बही में
सन साठ से दर्ज
रामस्वरूप का कर्जा माफ हुआ हो।
हो सकता है
नये दरोगा जिलेसिंह के दिल में
गांव की बहू-बेटियों के प्रति
थोड़ी-बहुत हया हो
और संभव है
नरेसिंह का छुटका
नया बस्ता लेकर
स्कूल गया हो।
आओ देखें
कि कुछ हुआ है
या वही अन्धे गैल हैं
और वही बेदर्द जुआ है।

●

□ प्रकाशनारायण तनिक

लावारिश लाश

(17 जून 1979 की सुबह, रेलवे स्टेशन, अजमेर पर एक भिखारिन की लाश पड़ी थी, मुख पर मक्खियां भिनभिना रही थी, पास में एक कपड़े पर आते जाते लोग उसके कफन के लिये ५-१० पैसे के सिक्के डाले चले जा रहे थे, उसी लाश की तरफ से मैंने ये भाव व्यक्त करने का प्रयास किया है। इस कविता के माध्यम से मैंने नारी की दशा को चित्रित करने का प्रयत्न किया हैं।

मैं एक लावारिश लाश हूं,
मुझे कफन के पैसे दे दो।
मेरी अस्मत के ओ लुटेरो,
मैं तुम्हारी मानवता का मूल्य,
नही मात्र सिर्फ ब्याज हूं।
मै एक लावारिश लाश हूं ....

आज चौराहे पर मेरी नहीं,
तुम्हारी माओ बहनों की,
इक दर्द भरी आवाज हूं।
मैं एक लावारिश लाश हू............

सदियो से तुमने मुझे लूटा,
तुम्हारे स्वाभिमानी मन रावण की,
सती सीता की पवित्र आवाज हूं।
मैं एक लावारिस लाश हूं............

मनु की श्रद्धा, इतिहास की इड़ा,
वैशाली की नगरवधू आम्रपाली,
के गौरवमय इतिहास की याद हूं।
मैं एक लावारिश लाश हूं.......

तुमने मुझे कहां से कहां पहुंचाया,
गृहस्थी से उठाकर कोठे पर पहुंचाया,
मैं तो उन्हीं घुंघरुओं की आवाज हूं।
मैं एक लावारिस हूं

दिन में सफेद रात में काले,
दिलवालो जरा ध्यान से सुनो
मैं तुम्हारी क्रूर दानवता की मिसाल हूं।
मैं एक लावारिस लाश हूं।



□ प्रभातकुमार प्रेमी

अहसास

दूरिया बढती जा रही हैं
और मैं तुम्हे
अपनो का अहसास दे
जी रहा हूँ

मेरे जीवन मे
यमुना के तट / वन्सी / कदम्ब
कुछ भी नही / फिर तुम्हे राधा कहना
जीवन के बसन्त के साथ
खिलवाड करना है।

नही / तुम वह / शवरी भी नही
वर्षो तप / प्रतीक्षा कर
किसी राम को
झूठे वैर खिलाने का साहस
कर सको

मीरां सा / निर्लिप्त प्रेम
जहर पीकर भी / स्वय को
जिला सको

किसी लै-ऽ-ला सा
आत्मसमर्पण / चाह / तुममे नही
मजनू के रक्त-लिप्त / जीर्ण-शीर्ण
गिरेबा मे / तुम्हे पाने का साहस
झूठा है।

शीरी सा शील / सौन्दर्य / तुममे नही
प्रियजनो के बाण से / किसी को

प्रेम के देवता पर
बली चढ़ा सको

यादों के रेगिस्तान में
यादों की हूर-सी
तुम मुझे / दिखाई नहीं दी
रेतों में / लहूलुहान-तलुओं में / मैंने
कई बार / भाग-भाग कर देखा है

फिर भी किसी दिन
आवारा बदली-सी
जीवन के तपते मरुस्थल पर
शायद / बरस सको
तुम्हारा बदलता रूप
सावन का एहसास
दिला देता है
मरते जिस्म को
जिला देता है।



□ कुमारी खुशाल श्रीवास्तव

अरण्य रोदन

कुकर मे बन्द कर
चढा दिया गया हूँ उबलने
गैस पर
अब स्थिति यह है कि
'फिरि फिरि मूजेमु तजहुँ न बारू'
ईसा तो एक ही बार क्रूस पर चढ कर
तीसरे ही दिन मुक्त हो गये थे–
अपनी पीडा से
पर मैं नित्य ही
अपना क्रूस कन्धे पर उठाये
जाता हूँ क्रूसोफाई होने
और फिर छिद्रित हाथ-पावो के साथ
सिर पर काटों का ताज
और हृदय मे ठण्डी ज्वाला ले
फिर लौट आता हूँ
अगले दिन फिर
सलीब पर चढने के लिये
कौन सुनता है
मेरा अरण्य रोदन



□ दुष्यन्त व्यास

कोहरा

बूढ़ी देह से
मनचाहे
पुराने टूटे आइने सी
चमकहीन
कुहरे में ढके सूरज के सामने
चमगादड़–सी
अनुभति हीन
यह सड़क / दम तोड़ती किरण सी
कुण्ठाओं में जीती
यथार्थ से टकराकर
टूटन भरी देह में
दर्द की
अनगिनत पगडंडियाँ मिला रही ॥

●

□ भगवतीलाल शर्मा

बुजुर्ग

मैं बुजुर्ग हो गया हूं
बाल मेरे सफेद हो गये है
अब मैं बरसो से दबी इच्छा
पूरी कर सकता हूं
किसी युवती को बेटी कहकर
आराम से सहला सकता हूं।



□ हरिश व्यास

आश्वासन

मंत्री महोदय ने
अपने उद्बोधन में कहा –
हम दस वर्षों में बेरोजगारी का
समूल अंत कर देंगे,
तभी दूसरे ने कहा
हम आगामी पांच वर्षों में
शिक्षा का माध्यम
पूर्ण हिन्दी कर देंगे
तभी हमने तपाक से
आदरणीय मंत्रीजी से कहा –
हुजूर
आप कितने वर्ष और
इस मंत्री पद पर
आसीन रहेंगे।



□ बी० एल० अरविन्द

गजल

चेहरो के पीछे असली औकात छिपाये दैठे है
लोग यहा पर होठो मे कुछ बात छिपाये बैठे है
शक होता है हमको अपने घर आगन की नीयत पर
लोग यहा पर दीवारो मे घात छिपाये बैठे हैं
चॉद दबा है तहखानो मे सूरज बन्द तिजोरी मे
लाग उजालो के धोखा मे रात छिपाये बैठे हैं
खादी की चादर मे लिपटे हैं मखमल के व्यापारी
हसो के घर मे कौओ की जात छिपाये बैठे है
कितनी बासी और कागजी यहा प्यार की परिभाषा
अभिवादन मे लोग विषैले दात छिपाये बैठे है
आने वाले कल का मौसम कितना दर्द भरा होगा
लोग यहा पर आँखो मे बरसात छिपाये बैठे है।



□ अर्जुन अरविन्द

उजली किरण के लिए

लोग
अफवाहों के पत्थर
फेंक देते हैं रास्तों पर
राहगीर
टकराकर या ठोकर खाकर
चौराहे पर ला पटकते हैं
फिर बहस के लबादे ओढ़कर
बैठ जाते हैं
सुनसान तलहटी पर
जहां सिर्फ
भ्रम के झींगुर बोलते हैं
हम महज सपनों में डोलते हैं
एक दूसरे की जेब टटोलते हैं
साथ चलने वाले हर कदम को
शक की दृष्टि से देखते हैं
अंधेरे तले बैठकर
चरित्र खोजते हैं
छोटों को दबोचते हैं
रेंगती संभावनाएं
उलझ गयी हैं
टकराव की झाड़ियों में
उजली किरण के लिए
ढेर से अंधेरे को निगलना होगा
सफलता की सीढ़ी चढ़ने के लिए
बर्फ सा पिघलना होगा



नियति

अंधेरे की बाहो मे झूलते
अनजानी सडक पर घिसटते
पहुच जाते है हम
खण्डहरो की गोद मे
या उदास पहाड की तलहटी पर
जहा धडकने नही उगती
सिर्फ खामोशी पसर जाती है
कसौटिया
पहचान की पगडडिया
दूर दूर तक कही नजर नही आती
और अहसास की नन्ही किरण
फूटते फूटते
सभावनाए थक जाती है
जिव्हाए उगलने लगती है
उदासिया
पहाड से टकराना
और धुए सा विखर जाना
नियति नही है
बेहतर है
हम परस्पर जुड जाए
एक ही धरातल पर चढ जाए
हम पहाड गिरा नही सकते
पहाड बना तो सकते हैं।



□ अखिलेश्वर

तुम्हारे हाथ में

तुम
जो अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हो
और अपनी रिक्तता को
कल्पना के रंगों में भर रहे हो
शायद भूल गए हो कि
अवसर कभी आता नहीं
लाया जाता है
कि जैसे कुआं
प्यासे के पास नहीं
प्यासा कुएं के पास आता है।
मैं नहीं कहता
कि तुम कुएं के पास जाओ
कुआं तुम्हारे हाथों की सर्जना है
उसे बनाओ
और उस तक आने वालों की प्यास बुझाओ।
तुम देखोगे
तुमने अवसर की प्रतीक्षा नहीं की है।
बल्कि अपने हाथों की शक्ति
समय के सूखे कंठ को दी है।



रोशनी की खोज

रात लम्बी है
मुझे मालूम है
और सूरज के हृदय में
बादलों का भय

मुझे मालूम है।
पर मेरे कस्बे के वासी
दिवस की पहचान रखते हैं।
किरन सूरज की न फूटे
और मुर्गा भी भले न बाग दे
ये जागने वाले
स्वयं के जागरन का
ज्ञान रखते हैं।
मुझे मालूम है
हम रोशनी की खोज कर लेंगे।
निशा निस्तब्ध हो चाहे
हम अपनी रिक्तता में
जागरन का
गीत भर लेंगे।



□ रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश'

बनजारा जीवन

सुख की तलाश में
फ़न की जवानी,
उजाले की
बारादरी में
भटक गई है।
श्रोर उसने तलाश कर ली है –
परेशानी,
उलझन,
चिन्ता,
निराशा,
कष्ट श्रोर शंका
सन्देह श्रोर अभिमान
खतरे।
मृत्यु
जो कभी नहीं श्रखरे।
श्रोर हम चौराहा पर ही भटक गये हैं
यानि कि हम भटक गये हैं।
खानाबदोशों की तरह।



हम कितने बौने

इधर खाई है, उधर कुंश्रा है।
हर तरफ फैला स्याह धुंश्रा है।
एक धुश्रे में—
सिमटे कैद,

हो गये हैं अपने दायरों में।
सब मौन हैं
क्रॉस मसीहा से —
लटके सलीब पर
सूए की तरह रटी—रटाई भाषा बोलते हैं।
बे-तरतीब हुए डोलते हैं
कुछ कर नहीं
पाये जो जीवन में
मच्छर की तरह।
यानि की एक अक्षर की तरह
पूर्ण वाक्य भी न बन पाये —
न जाने किस खेत के बथुआ
की तरह समाज में
औने-पौने हो गये है ?
'चन्द्रेश' आज हम
कितने बौने हो गये है।



□ रामनिवास सोनी

प्रश्न—नई व्यवस्था के

तम भी यदि सूरज में गांठ-गांठ हो जाय
तो प्रकाश कौन करे ?
अंधेरे की चादर फैलाव की तरह फैली है,
दिशाएं मौन हैं।
सत्य की मशाल जलती जलती बुझ जाय
यह मुमकिन तो नहीं
मगर एक संभावित सत्य है।
क्योंकि
असत्य आम चौराहे पर धूनी रमाएं बैठा है।
सभता के नाम पर
जय का उद्घोष कहां नहीं होता ?
आदमी भूल-भुलैया में फंसा
स्वयं को सुलझाता है
मगर दूजे को उलझाता है।
व्यवस्था के नाम पर क्या नहीं होता –
नई रूढ़ियों का पुनर्जन्म होता है
अच्छाइयों का अवमान होता है
और हर नया दिन एक नई सौगात लिए आता है
धोखे से यही तो कभी
युग-सत्य समझ लिया जाता है।



☐ अशोक पन्त

सूरज की ऊष्मा और चाँदनी

यूं मैंने भी कई बार चाहा था
इस चान्दनी को डिब्बे मे कैद कर दूं
ताकि अन्धकार मे
मनहूस एकाकीपन का सामना कर सकूँ
पर यह महज मृगतृष्णा थी।
ठीक वैसी ही
जैसे बिना तेल के दिए के जलने की कल्पना !

चाँदनी तो मुक्त है
उसे चाहिए खुले मैदान
विस्तृत सागर
चढने हेतु गगनचुम्बी छतें
और फैलने हेतु असीमित खुला-खुला आसमान,
यह अधकार के दरवाजो को नही खटखटाती
चाँदनी एक कलकित मानव की उदारता सरीखी है
अन्यथा धरती चन्द्र के कलक से कभी की घिर गई होती

पर प्रश्न रह-रह कर उठ खड़ा होता है मन मे
आखिर
सूरज के उजाले मे
ऊष्मा ही ऊष्मा क्यो है ?
कई लोगो की जिन्दगी चाँदनी सी ठण्डी बनी हुई है,
तो बहुतो की जिन्दगी जलती हुई दोपहरी क्यो है ?
कितना अच्छा होता,
यदि चाँदनी के प्याले मे
दो-चार बूद सूरज की ऊष्मा डाल दी जाती,
फिर भी –

एक प्रश्न रह जाता है अनुत्तरित
जो बार-बार हृदय को बेरहमी से उमेठे चला जाता है।
कि आखिर तपन और ठण्ड में इतनी दूरी क्यों है,
शायद
जब तक जग की छाती सुलगाती रहेंगी अनेक भट्टियाँ
जब तक लोहे का कुछ भाग ठण्डा रहेगा,
आखिर दहकते हुए अंगारों की व्यथा
चाँदनी के कानों में कौन कहेगा ?



□ मनमोहन झा

त्रासदी

टी० बी० के मरीज़-सा
सूरज/बेवक्त ही
कफियाने लगा है
बास मारता अंधेरा
गुस्सैल / भवरदार हवाओं में
घायल कबूतरों की तरह
फड़फड़ा रहे हैं / बजनी (?) करेन्सी नोट
रोटियां
उड़न तश्तरियों की तरह
अंधेरे में/चक्र मत्र/उड़ती-उड़ती
ताड़ सरीखे दरख्तों पर/बैठ कर
मुंह चिढ़ा रही हैं
लँगड़ी/भयाक्रान्त भीड़
हाथ ऊंचे किये चीख रही हैं
नपुंसक चीखें।
आह! यह कुहरिल मौसम / और / परिवेश की/
त्रासदी!

ठीक-ठीक पता नहीं चलता
यह दिन है / या / रात?
आदमी/प्रतिपल जी रहा है मौत / या
मर रहा है जिन्दगी।



☐ मोहम्मद सदीक

गज़ल

भीड़ बढ़ती ही रही पर आदमी घटता गया ।
नया सहर आई बिनाश दूर तक कटता गया ।।
कौन मुट्ठी में दबा सकता है सारी जिन्दगी ।
जब किरन फूटी अंधेरा आप ही छटता गया ।।
मन के भीतर मादगी का क्या करे कोई इलाज ।
दर्द से टूटा मनस टुकड़ों में फिर बंटता गया ।।
जंगलों ने राह दी बस्ती को बसने भी दिया ।
क्यूं शहर से आदमी का आदमी हटता गया ।।
पांव के पुख्ता इरादों से बनी पगडंडियां ।
हर समन्दर हार कर खुद राह से हटता गया ।।
जब किसी ने उसके मौनी मर्म से पूछा सवाल ।
आदमी हो ? मर मुस्काया, रो पड़ा, नटता गया ।।
मौसमी मुर्गों ने दे डाली अजानें पुरखतर
चौंक कर उट्ठा मुसाफिर राह से हटता गया ।।

●

गीत

चेचकिया सड़कों पर
गिनती के घेरों में
बतियाती रेखाएं
गुमसुम अंधेरों में ।
धुनते हैं — बुनते हैं
सपने हैं—अपने हैं
आदम के ढेरों में—गुमसुम अंधेरों में ।।

पगलाती पगडण्डी
पीडा सहेली है।
इठलाती ग्राशाए
कितनी ग्रकेली हैं
पासें हैं -ग्रासें हैं
कितनी शलाखें हैं
उगते सवेरो मे -गुमसुम ग्रंधेरों में ।।

पनघट की मरयादा
प्यासो की मजबूरी
साधें सवालों की
दर्पन से ही दूरी
ग्रपनी है प्यारी है।
दुनिया हमारी है
ग्रनजाने चेहरो मे—गुमसुम ग्रधेरो मे ।।

ग्रलसाये ग्रागन मे
मुरझाती बेलें हैं
कोपल कुंवारी है
ग्रनगिन झमेले हैं
ग्रसुवाता हर पल है
ग्राहो की हलचल है
उजडे बसेरो मे -गुमसुम ग्रधेरों मे ।।

ग्रासू के ग्रन्तर मे
पीडा की पायल है
सासो की सरगम का
पंचम भी घायल है
टुकडो को सीना है
मरना है -जीना है
सासो के घेरो मे -गुमसुम ग्रधेरो मे ।।

दुल्हन की डोली है
कंधे कहारों के
इतनी तमन्नाएं
सपने कहारों के
साजन से मिलना है
बगिया का खिलना है
कितने लुटेरों में —गुमसुम अंधेरों में।



□ पृथ्वीराज दवे 'निराश'

लाश

पहले वह
जिन्दा था
उसमे, हरकत थी
आकाक्षाए थी,
तूफान से लडने की
हिम्मत थी।
अब वह पडा है
निर्जीव-सा
उसकी कल्पनाए
अब नही दौडती
उसकी रगो का लहू भी
किसी की अस्मत
लुटती देख कर भी
अब नही खोलता।
क्या फर्क है (?)
उसमे और इसमे —
जिसे हम मरघट मे
दफना कर आते हैं।



□ प्रभात 'प्रेमी'

यादों के खत

तुम्हारी यादों के
बेरंग खतों के
बना लिये हैं/मैंने
कुछ रंग-बिरंगे / फूल
जिन पर जम गई हैं
तुम्हारी वफा की / धूल
और उग आये हैं / उन पर
तुम्हारी यादों के / कांटे
जो अनजाने में
स्पर्श करने पर
भेंट करते हैं / एक
अनुपम रक्तिम उपहार
यही था ना /
तुम्हारा प्यार ?
फिर भी / उन्हें
सजा रखा है / मैंने
दिल के गुलदस्ते में
जब भी / तुम्हारी यादों में
खो कर / अतीत के खतों को
टेलीविजनी मानस पर्दे पर
अंकित कर / पढ़ने लगता हूं
तभी / पलकों का पोस्टमैन
गिरा देता है / एक नया खत
मायूस हाथों / चुपके-से
सजा लेता हूं / समझ कर / तुम्हारी
यादों का खत !



□ जनकराज पारीक

गज़ल

आजकल कुछ इस तरह लाचार हूं बाज़ार में
बिन जली तीली हो ज्यों बारुद के अंबार में।
ताब तो है फिर भी कुछ बेताब लगता है मुझे
बेबसी घर कर गई है दहकते अंगार में।
जिंदगी और मौत का अंतर सिखाऊंगा तुम्हें
मैं मसाले भर के रखा जा चुका हूं जार में।
खो गया होगा कोई इस भीड़ में, खोता रहे
मेरी ही तसवीर क्यों छपती है इश्तिहार में।
होशियार दोस्तो परखूंगा अब मैं दोस्ती
चार चावल ला रहा हूँ बांधकर अखबार में।



□ भगवती प्रसाद गौतम

मेरे गांव में

दिन भर धूप पीते हुए,
अपने पावों से
खेत के ढेलों को ललकारते हुए
वक्त कितना जल्दी कट जाता है।
फिर भी
लगता है कुछ नहीं हुआ
और शुरू हो जाता है
घर लौट जाने का सिलसिला।
सारा पसीना खेत में चुक जाता है
साथ चलती हैं केवल थकान
उदासियों की वर्णमाला रटती हुई
बस्तियों की ओर –
मेरे गांव में
टिमटिमाते दीयों की रोशनी
स्याह अंधेरों से भी ज्यादा
भयानक हो चली है।
चौखट पर पांव रखते ही
एक अदद दरवाजा
दोहराता है वही एक प्रश्न
'आज क्या बनेगा ?'
और ऐसे ही अनेक प्रश्नों के
उत्तरों की खोज में
करवट बदलते हुए
रात भी ढलने लगती है –
फिर वही सुबह
वही धूप
वही खेत के ढेले......।

●

□ व्रज भूषण भट्ट

रोशनी का विश्वास दे दो

माना तुम बहुत सुन्दर गीत रचते हो
माना तुम बहुत मधुर राग अलापते हो।
मगर सोचा कभी अपनी कलम से –
कितना इन्सान का दर्द तराशते हो ? ।।१।।

प्यार को बदनाम करना नहीं चाहता –
याद को सपन–भूल कहना नहीं जानता।
मैं, वासना का हूं नहीं पुजारी, कविता
को अभिसारिका बनाना नहीं चाहता ।।२।।

इसलिये अब इस माटी के गीत लिखता हूं –
इसकी गंध को शब्दों में अर्थ देता हूं।
इसको स्वर्ग मानकर गीता–गायक के –
स्वर्णिम मधु-सपनों को साकार करता हूं ।।३।।

इसलिए अब राणा–शौर्य से काव्य भरदो–
नई पीढ़ी को शिवा की हुँकार दे दो।
राजाओं का हो चुका बहुत सत्कार –
श्रमिक को सिंहासन दे अमृत–अभिषेक कर दो ।।४।।

रूप की हो चुकी बहुत शृंगार व्याख्या–
कुरूप को पसीने का उपहार दे दो।
कहां तक कहूं हर बात आज साथी –
हर इन्सान को रोशनी का विश्वास दे दो ।।५।।



□ नभोनाथ अवस्थी

हस्ताक्षर फेर गया

टूटते हुए पानी का दर्पण
पारा-पारा हुआ
धूप ने
तालाब का माथा छुआ।
    घाटों पर डूब रहे धुंध के किनारे
    चीर रहे वन पाखी सूने भिनसारे
जाग रहे चंदन-वन
अलसाई नींदों से
घोल रहा अन्दर का
अपा-सा धुआ।
    पर्त दर पर्त कुहरा बिखरा सैवालों पर
    हस्ताक्षर फेर गया कोई तालाबों पर
लहरों में लौट चले
सवदन अनब्याहे
माटी में फैल रही
कलमुँही-सी
बद्दुआ।



खो गये संवादों का मूल्य

जब से सूर्य का नाम विद्युत पड़ा है
जब से हवा हुई है आक्सीजन
और आदमी के भीतर पैदा होने लगे हैं
जीन्स

हुआ यह है कि
पुराने संवादों का सिलसिला टूट गया है
पहाड़ों ने उड़ना छोड़ दिया है
और नीम के पेड़ ने हकीमपना भी
चौसठ बत्तियों वाली हेम कंवर रजवंती भी
नहीं बोलती है आजकल कोई भेद।
चौपालों पर दोहे और
अलावों पर चौपाइयों ने अपना अस्तबल उठाकर
डाल दिया है अंधेरी बंद कोठरी में
हुआ यह है कि
दीवालों के कानों में जड़ गया है
पिघला हुआ शीशा
रानी केतकी ने भरी सभा में बैठकर
फैसला करना छोड़ दिया है
और सारी-सारी रात
मकानों ने लटका लिए हैं जबानों पर ताले
चारों तरफ धुंध ही धुंध छायी है
लगता है जैसे –
कोई नगर उजड़ गया है
और किसी ने भरे जंगल में बैठकर
भैरवी गायी है।



धूप का चक्रव्यूह

शुरू-शुरू में लगता है
ग्रासमान बड़ा साफ है
पक्षी घोंसलों में ग्रंडे देते हैं
ग्रौर मौसम जैसे किसी
कोरी स्लेट पर बैठकर लिखना सीख रहा है
परिभाषाएं
लेकिन –
जैसे-जैसे बढ़ता है ग्रध्याय
ग्रौर कथाएं होती हैं ग्रारंभ
धीरे-धीरे फैलने लगता है धूप का चक्रव्यूह
बादल समेटने लगते हैं ग्रंधियारे के पहाड़
तो मालूम देता है कि
रास्ता बहुत साफ नहीं है
ग्रौर गुफाग्रों में बंद कर लिया गया है
कोई महासूर्य
तब हम सब लोग देखने लगते हैं
दोनों हाथों में ब्रह्मांड को
ब्रह्मांड वह –
जिसे पसीने से बनाया जाता है
इतिहास का ग्राधार है जो
ग्रौर ग्रादमी जिसके पास जाकर
सुस्ताता है।



□ महेशचन्द्र वर्मा

सुबह का सूरज तो आयेगा ही

अंधेरी रात के
भूत को भगाने
भटकते हुआ को
राह दिखाने
अपने को
अपनो को
उजाले मे रखने के लिए
एक साथ बैठा कर
समझा-बुझा कर
नये जीवन की शुरूआत करने
कल ही तो तुम्हें
रात का नया सूरज दिया था ।
तुमने उसे
तोड-फोड
काट-छाट
परस्पर बन्दर बाट कर
रोशनी समाप्त कर दी
इन अट्ठाईस महीनो मे
सूरज के गोले की जगह
मिट्टी का ढेला बना दिया ।

अब तो ! पुरातन की ओर ही लौटना होगा।
उसी
तीस साल पुरानी लालटेन का

सहारा लेना होगा
जिसका गोला
टूट चुका है
फिर भी, यदि,
एक बार बत्ती जल गई तो
उसमें तूफानों से लड़ने की हिम्मत
अब भी बाकी है।
विवश-विषम से
टूट गोले को जोड़
रोशनी देने में समर्थ होगी
सूरज तो नहीं होगा
न सही
रोशनी तो होगी ही
अँधेरे में पैरों को
चलने का
सम्बल तो मिलेगा।
अन्यथा
अत्यंत गहरे अन्धकार में
कभी भी चोर घुस आयेंगे
वर्षों की मेहनत को
यूँ ही उठा ले जायेंगे।

कुत्तों की तरह आपस में भौं-भौं करने वालो
समय के रहते
अपने को पहचानो
इन्सान हो,
हैवानियत से बचो
अब भी समय है

समझो, सोचो और कुछ कर डालो
सूरज न सही
लालटेन ही को अपना लो
विश्वास रखो
सुबह का सूरज तो आयेगा ही।



■ मोडसिंह बल्ला 'मृगेन्द्र'

गीत

हटो भी निन्दिया, रतजगे की रात पर
कोई गीत सावन को लिखने दो।
चमकी चपला
हायरी चपला
कौन ले रहा
बैरन बदला
ठहरो, मत शोर करो विकल वक्त की सांसो पर
कोई गीत सावन को लिखने दो।
बहका पवन
पडौस म गगा
छन-छन छनका
मिलना कगना
चन्द्रिका उस ओर न जा इस नेह मेह पर
कोई गीत सावन को लिखने दो।
पाखी कलरव
साझ सुहानी
दोहराती जाती
कल की कहानी
न बहको म पियार, बतियाते मौसम की तरुणाई पर
कोई गीत सावन को लिखने दो।
चुप री चन्द्रिका
चुप रे चन्दा
फिर ले आया
व्यग्य चुनिन्दा
विकल वेदना, विरह वरत की काली पाखो पर
कोई गीत सावन को लिखने दो।

●

□ सोहनलाल प्रजापति

राजनीति

एक

कुछ व्यक्तियों के लिए
आज की राजनीति
उलझे बालो का गुच्छा है।

उलझे बाल
सुलझने पर भी
नही सुलझते।
हार कर उन्हें बेमन से
तोड़कर फेंकना पड़ता है।
और उपाय ही क्या है ?
उलझे बाल
व्यक्तित्व को
कुण्ठित करते हैं।

प्रपंचना पूर्ण
कुत्सित राजनीति
उलझे मसले
चेष्टा करने पर भी
नही सुलझते।
समझदार नेता उसे बेकार समझ
सन्यास ले लेता है।
बेकार के बोझ से
हल्का हो जाता है।

दो

पर, बुद्ध के लिए
आज की राजनीति
उलझे बालों का गुच्छा नहीं
अघोरी साधु की उलझी लम्बी लटें हैं।

सबी चोटा जमी लटें
सुलझाने की चेष्टा करने पर भी
सुलझती नहीं
काटी जा सकती नहीं

क्योंकि साधुत्व की निशानी है।
जीवनयापन एवं
लोगों को धोखा देने का
साधन है।
व्यक्तित्व निखार
एवं लोक-प्रिय बनने का
बेजोड़ बहाना है।

अघोरी साधु
जिन्दगी भर
उलझी लटों का भार
बड़े चाव से ढोता है
अन्त में उसी के साथ
आग में जल कर
अस्तित्व खोता है।



□ कैलाश 'मनहर'

गीत

दोस्त / आंसू बने,
दर्द / बहते रहे,
आंख से / नींद की
दुश्मनी हो गयी........

अपने जूतों की / कीलें,
तुम्हे / क्या चुभे ?
य / भभकते हुये / पेट .
कैसे बुझे ? .. ..

वो बरसते रहे /
हम / तरसते रहे,
बात / बेबात थी / पर
हँसी हो गयी........

बोटिया / जिन्दगी की भी
छोड़ी नही,
न खुली / न सही
गाठ तोड़ी नही........

चांदनी मे / जहर,
ढो / सो / रहा है शहर,
आज
अनजाने मे
खुदकुशी हो गयी.......



कविता

वसंत को कैद करना /
बहुत मुश्किल है / दोस्त
और फिर /
मौसमी नदी के उफान को
बालू की दीवार से / रोकना.......

तुम धोखे में हो / भाई—
कि खून को / रंगो मे बाट रहे हो
जबकि
गिरगिट / इन्सानो मे होते हैं..........

रात
अंधेरे की नही / बल्कि
धोखे के उजाले की है
क्योकि
बिजली / अनेकों के घर उजाड़ जाती है /
इसलिये
मौसम का कहना मानो / मेरे भाई
वसत को आजाद कर दो / और
नदी को कटाव बनाने दो।
रंगो को / खून से मत मिलाओ / मेरे दोस्त
आदमी पर बिजली नही
पहचान बनाने योग्य / प्रकाश डालो –
क्योंकि
दर्द का एहसास।
एक-सा होता है....

□ रश्मि गुप्ता

दो कविताएं

लकड़ी के चौखटे मे कसा कैनवास,
उस पर बेतरतीबी से खीची गई
लकीरे, आडी–तिरछी,
इन्द्र–धनुषी रगो के अभाव मे
रीति ही रह गई,
आधुनिक शिल्प की संज्ञा से
विभूषित हुई....... ....
एक चित्र प्रतियोगिता में ।



मुंह का कसैला स्वाद
अब स्थाई हो गया है,
कि हर स्वाद का एक ही
रंग हो गया है
कारण ढूंढने की कोशिशे,
हर बार असफल रही ।
याद नही आता कि –
आखिरी बार क्या खाया था ?
दुख का तीखापन ! या चखा था
जिजीविषा का फीकापन ?



□ भगवतीलाल व्यास

अप्रैल उत्तरार्ध की एक आदिवासी सांझ

उतरी है सांझ फिर
आकाशी अटारी से
पहाड़ों की चोटी पर पांव धर।
ये नंगे पहाड़
डटे वे काफिलों जैसे
झड़-पत्ते पेड़ उन पर खड़े ऐसे
बाल ज्यों रह आयें भूरे
सिया तोतो की नुकीली पीठ के।
दीठ के विस्तार तक
घोली दिशाएं मौन
ज्यों संवेदना-सी।
कभी अपने युवा क्षण में
ठाठें मारती, फुफकारती
यह पहाड़ी नदी
लेटी इस तरह निष्पन्द
अन्तिम क्षण गिने
ज्यों रोगिणी कोई।

⊙

खलिहान के चक्कर में
चक्कर लगा दिन भर
थके ये गऊ जाये पांव
रह-रह पूछते हैं
और कितना और?
हाथ की सटी संभाले

एक ममता प्राण
थूक अपना गिटक कर
टिटकारता—कहता—
सूरज ढले तक और
पुत्रो, सूरज ढले तक और ।

⊙

और वह जो छोर दिखता है
यहा से धूल-धूसर
लोग कहते बन रहा है
वहा कोई बाध
जिस पर कर मजूरी
लौटते कुछ पाव नगे
हाथ मे लकर कुदाली
माथ पर धर कर तगारी
पैदा चिलकता जिसका
विदा होते सूर्य की यह
रोशनाई लाल
माडती है थके चेहरो पर
फिर कई सवाल
एक इनमे यह
कि ठेकेदार ने कम कर दिए है
दस जने कल काम पर
दस जनो का सूर्य
कल किस दिशा से ऊगे ?
है नही उत्तर किसी के पास ।

⊙

धु आ उठता है
टपरियो से, कुछ यहा से
कुछ वहा से
मसमसाये अधजले उपले
सिकी और अधसिकी

सब रोटियों की गन्ध
पूरी पहाड़ी पर फैलती है
और लगता है कि जैसे
अभी थोड़ी देर में
सुलगने लग जायेगी पूरी पहाड़ी
भूख से
किन्तु यह लगना
कभी पूरा नहीं होता –
काश यह होता !
प्रति सांझ ऐसे ही धु आ होता शान्त
शांत होती पेट की वह आग
चांद रीती हड़िया-सा
इसी तरह टंग जाता रोज
इससे कुछ अधिक नहीं
हुआ इस पहाड़ी पर और।

⊙

पीपल के दूध-सी
गंधाती देहयष्टि आदिम यह
अल्हड़सा निरावृत्त
अपने में मगन और
समय के सर्प से निश्चिन्त
रेंगता जो बगल में उसके
ऐसी निर्वाक दृष्टि
और कहां पाओगे ?
कवि मेरे, ठहरो कुछ क्षण
कुछ पल इन वियाबानों में
फूस के मचानों में
इस सूखे कुएं पर लगे हुए
जर्जर रहट की पाटी पर
बैठ कर लिखो भी कोई महाकाव्य
अपना यह धूप का चश्मा

अब तो उतार दो
देखो तो, यहा कही
काच की किरचें नही बिखरी हैं
सब ओर माटी ही माटी है
श्यामल–कोमल मनुहार भरी
माटी यह चुभन नहीं देती रे
अलबत्ता तुम्हारे अन्तस को
अपने रग मे रग लेगी रे
जो तुम्ह पसन्द नही
तुम्हारे काव्यशास्त्र मे क्या कही
माटी का छद नही ?
पर सुन लो
काव्य नही इससे रुक पायेगा
यह जो उतरी है साझ इन बस्ती पर
बाझ नही
तुम नही लिखोगे तो
कोई और लिख जायेगा ।



□ माधव नागदा

तलाश

आज हर कोई
अपनी टूटी जिन्दगी के बिखरे खण्ड
जोड़ने में लगा है
आज हर किसी के दर्दीले होठों पर
सदियों से चला आ रहा एक ही नारा है –
संसार असार है
जीवन निस्सार है
आज का मनुष्य जी नहीं रहा
जिन्दा रहने की चिन्ता को बैल की तरह
ढो रहा है।

मैं तलाश में हूं ऐसे व्यक्ति की
जो ललकार कर कह सके
मैं हंसते हुए मर सकता हूं
मैं जीवन की सारी कुण्ठाओं और सन्त्रासों के मध्य
हंसते हुए जी सकता हूं
मैं जीवन की निस्सारता को निचोड़कर
आनन्द की बूंदें निकाल सकता हूं।

जिस दिन ऐसा मानव
जो मरने की कल्पना पर मुस्कुरा सकता है
जो जीवन की वितृष्णाओं में रस ले सकता है
मेरे मन के आंगन में प्रवेश करेगा
मेरी कलम से
एक नयी कविता का जन्म होगा
एक नयी कहानी का उदय होगा।



□ निशान्त

यथार्थ

अत्याचार के विरोध में
उठाएं पत्थर
या अत्याचारियों के
चंगुल में ही न आए
कहां हैं ऐसी
इस देश की
अधिकांश जनता ?

यहां के लोग तो हैं ऐसे
कसाइयों-से
आदमियों के हाथ में
देकर अपनी चोटी
रिरियाते हुए
करते हैं विनती
'मालिक जरा दया करना
चोटी ज्यादा न खींचना।



□ धरनी रायर्ट्स

हकीकतें

अब मैं
किसी खुशी में शामिल नहीं होता।
मय्यतों और शवयात्राओं में
जाना मेरा नियम हो गया है।
खुशियों को झेल पाना,
मुझ जैसे गहित इंसान के लिये
मुश्किल है।
खुदी हुयी कब्रें देखकर या
सजी हुयी चितायें देखकर
बड़ा सकून-सा मिलता है।
शवयात्रा में शामिल,
उदास चेहरे, जिन्दगी के काफी
करीब नजर आते हैं।
अर्थी पर लेटा पार्थिव शरीर
जिन्दगी की फिलॉस्फी का
द्योतक होता है।
सुहाग की चूड़ियां तोड़ती
स्त्रियां बिलखते बच्चे या
मां-बाप के निस्पंद शरीर से
लिपटकर रोते बच्चे
जिंदगी की हकीकतें लगते हैं।
किसी खुशी को ढो पाना,
बड़ा बेहूदा लगता है मुझे,
किसी बच्चे की पैदाइश पर ही
मैं उसकी मौत की
कल्पना करने लगता हूं।

हर आरम्भ का अंत मुझे
सच्चाई लगता है।
आरम्भ तो महज अंत तक
पहुंचने का एक सिला होता है।
लाश जब फुकने लगती है
तो पछताता हू यह सोचकर
कि वहा मैं क्यो नही हुआ ?
शायद वहा होने की
उम्मीद लिये ही जी रहा हू।
यही मुझे हकीकत नज़र आती है।
इसलिए अब मैं
किसी खुशी मे शामिल नही होता
मय्यतो की बारातो मे
मौजूद रहता हू !



□ अज़ीज आज़ाद

गज़ल

जैसे हर सास मे इक उम्र घटी जाती है
जिन्दगी नीद सी पलको मे दबी जाती है ।

कंपकपाती हुई वो याद की ठडी सी लकीर
क्यों मेरे जहन मे आनो है चली जाती है ।

इक नदी थी जो बहती थी उफनती थी बहुत
मेरे आसू की तरह अब ता बही जाती है ।

देख सूखे हुए पत्तो का सुलगना क्या है
पूरे जगल की तरफ आग बढी जाती है ।

उफ् अधेर की तड़प देख सुरागा मे करीब
किस तरह रूप की चेहरो पे मली जाती है ।

•

हम रोज शिकायत के अलफाज उगलते है
किरदार के मुद्दे पर कमजोर निकलते है ।

हुक्काम से समझौता दावा है बगावत का
दस्तूरे-वफादारी हम खूब समझते हैं ।

जब जब भी तलाशे है बरगद ही तलाशे है
है जहन में ठडापन जजबात सुलगते है ।

झरनो के तले बैठे टीलो का भरम लेकर
है आच की अगुआइ साये से झुलसते हैं ।

न सच की तरफदारी न झूट से शिकवा है
मुँह देख के लोगों का हर बात उगलते हैं।

मुजरे की अदा लेकर सरकार से शिकवा है
गजरे की तरह हमको क्यो आप मसलते है।



□ देवेन्द्र कुमारी मिश्रा

ग़ज़ल

दर्द बन जाये मगर नासूर तो क्या कीजे
मौसम भी दे जाए दगा तो क्या कीजे ।

दफ़ना के सुहाने लम्हों का ताबूत
घुमाये नश्तर कोई तो क्या कीजे ।

हमने तो सजा लिये थे ज़ख्मों पे पैबन्द
रिस आये मगर खून तो क्या कीजे ।

तमन्ना थी लिखने की हरफ़ उजले
बिखर जाये मगर रोशनाई तो क्या कीजे ।



□ रामस्वरूप परेश

गजल

रोज ही जीता रहा मरता रहा हू मैं
उम्र का दामन रफू करता रहा हू मैं ।

हर खुशी अपनी कि अपना हर जवां सपना
जिन्दगी के कर्ज मे भरता रहा हू मैं ।

गध देकर गर्द ही पाई जमाने से
वक्त को सब कुछ नजर करता रहा हू मैं ।

पहाडो के सामने निर्भय खडा होकर
आंधियो से सन्धिया करता रहा हू मैं ।

क्या सुनाऊ मैं तुम्हें गन्तव्य की बातें
रास्तो में ही सफर करता रहा हू मैं ।

अब तुम ही मुझ को दाव पर धरने लगे
दोस्तो से इसलिये डरने लगा हू मैं ।



□ अर्जुन 'अरविन्द'

ग़ज़ल

छत पर मुस्काई एक शाम और
देह अलसाई एक शाम और।

आज तेरे अनकहे इरादों की
गंध चली आई एक शाम और।

आँखों के जंगल में अनुराग की
नदिया लहराई एक शाम और।

सूने आकाश में चंचल सुनहरी
बदली गहराई एक शाम और।

सपनों के डैनों में मदमस्त-सी
आकर ठहराई एक शाम और।

मन की किताब के रिक्त हाशिए पर
मौत उतर आई एक शाम और।



□ लालचन्द सोनी

शिक्षक दिवस

एक समय की बात
मैं जा पहुंचा
सिंगल टीचर स्कूल मे
अपने एक मित्र के साथ।

अध्यापक जी एक छात्र को
कुछ लिखवा रहे थे
अपनी तारीफो का पुल बधवा रहे थे
यह सब उसे तोते की तरह रटवा रहे थे
भूलने पर दो-चार चपत भी जमा रहे थे।

मैंने पूछा सर यह क्या हो रहा है
कही किसी कम्पीटिशन का रिहर्सल
तो नही चल रहा है ?
वे तपाक से बोले
तुम चुप रहो
मैं अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहा हूँ
बडी सच्चाई व ईमानदारी से
सरकारी आदेश का पालन कर रहा हूँ
कल शिक्षक दिवस है
छात्र को अपने सम्मान में बोलने
एक भाषण तैयार करवा रहा हूँ।



☐ अमर मेवाड़ी

मुक्ति पर्व

दोस्त
तुम आज भी ऊंची आवाज में चीखते हो
जबकि तुम जानते हो
तुम्हारी आवाज का और तुम्हारा
अब कोई महत्व नहीं है।

मैं जानता हूं
तुम बहुत ज्यादा महत्वाकांक्षी हो
और हर बात को अपने पक्ष में
मोड़ लेने की शक्ति रखते हो
फिर भी
तुम कभी नहीं कर पाओगे
हर क्षेत्र में अपना अधिकार।

शायद तुमने सोच लिया है
कि मैं तुम्हारे पिछले कारनामों को
भुला बैठा हूं
पर यह तुम्हारी ना-समझी है मेरे दोस्त
याददाश्त की सतह पर
कुछ भी नहीं भुलाया जा सकता
शायद तुम्हें मालूम नहीं।

तुम ने जिन अन्धेरे खण्डहरों में
धकेल दिया है हमें

वहा से लौट पाना कितना कठिन हो गया
    कितने बेबस हो गये है दिन
    कितनी बोझिल और उदास हो गयी है शामे
अन्धेरा इतना घना है
कि रोशनी का एक शहतीर भी
बरसो तक नही पहुँच सकता हम तक।

फिर भी हम प्रतीक्षारत है
कि कभी न कभी
उन अन्धेरे खण्डहरो तक कोई सडक
    अवश्य आयेगी।

किसी न किसी दिन
सूरज का प्रकाश
    उन खण्डहरो तक जरूर पहुचेगा
और हम
उन अन्धेरे खण्डहरो की कैद से
    आजाद हो जायेगे
और वह दिन
हमारा मुक्ति पर्व होगा
जब तक वह दिन नही आयेगा
तब तक हम उस दिन का इन्तजार करेगे।



□ अर्जुन 'अरविन्द'

सुखद यात्रा

हवाओं को
मुट्ठियों में बंद करना चाहते हैं ।
लोग
दिशाओं को नाप लेना चाहते हैं
अंगुलियों के पोर से
समय के संदर्भ में चुक जाते हैं
रेत पर इतिहास लिखने में
जिंदगी के दायरे
समेट लेते हैं
कुर्सियों की पीठ पर
भूख से चिल्ला रही
बे-जान पीढ़ी को
बांट देते हैं चंद आश्वासन के टुकड़े
पसर जाती हैं
धरातल पर दोगली स्थितियां
आओ
इसी मोड़ से एक सुखद यात्रा शुरू करें
सभी फिरकों से दूर
नई संभावनाओं को उगाएं
अंधेरे की बांहों में
सोये सूरज को फिर से जगाएं।



सम्पर्क सूत्र

1 शांतिप्रभा शर्मा — प्रधा, रा बालिका मा वि खैरवाड़ा (उदयपुर)
2 व्रजभूषण भट्ट — प्रधा रा मा वि वीरनगर (सवाई माधोपुर)
3 सांवर दइया — [illegible] जेल रोड, बीकानेर
4 पुष्पलता कश्यप — म प रा पद्मा उ प्रा कन्या वि पावटा, जोधपुर
5 शिव 'मृदुल' — रा. उ. मा वि चित्तौड़गढ़
6 चतुर कोठारी — कोठारी सदन बड़ा बाजार राजसमंद (उदयपुर)
7 अमरसिंह पांडेय — [illegible], भूसावर (भरतपुर)
8 भंवरलाल शर्मा — प्रधा रा उ प्रा वि मावली (उदयपुर)
9 भगवन्द्र दवे — म प र मा वि हरजी (जालौर)
10 रामस्वरूप परेश — सेठ पीरामल उ मा वि बगड़ (झुंझुनू)
11 कृष्णसिंह सजल — म. प, रा मा वि. नायपुर, पाटन (सीकर)
12 नन्दकिशोर चतुर्वेदी — पाण्डुदा, वाया बेगूं (चित्तौड़गढ़)
13 श्रीनन्दन चतुर्वेदी — बजाजखाना, पाटनपोल, [illegible], कोटा
14 प्रभात 'प्रेमी' — म प, रा उ प्रा. वि, सेवा (बांसवाड़ा)
15 रमेश मयंक — म प रा मा वि पारसी (चित्तौड़गढ़)
16 सावित्री परमार — श्रीमहावीर दि जैन उ मा वि, जयपुर
17. आनंद कुरेशी — सेंट पैट्रिक विद्यालय, डूंगरपुर
18 दीपचंद सुथार — म प रा उ प्रा वि, नं० 1 मेड़ता सिटी (नागौर)
19. दुष्यंत व्यास — द्वारा–[illegible] जोशी, [illegible] मार्ग [illegible]
20 अब्दुल मलिक खान — स प प्रा वि गुराडियामाना, झालरापाटन (झालावाड़)
21 मनोनाथ अवस्थी — डोराबली, गेहना (सवाई माधोपुर)
22 बाबू हंसमुख — भारतीय न्यू कॉलोनी, मनोहरपुर (जयपुर)
23 विक्रमसिंह गुंदोज — चौपासनी विद्यालय जोधपुर
24 रमेशचन्द्र शर्मा 'इन्दु' — स अ, रा मा वि, खोह वाया रोनीजाथान (अलवर)
25 कमला शर्मा — प्रज्ञा कुटीर, नई लाईन, गंगाशहर (बीकानेर)
26. कमर मेवाड़ी — चांदपोल, कांकरोली (उदयपुर)
27 गिरीश विद्रोही — रा बालिका मा वि, राजनगर (उदयपुर)

28 फतहलाल गुर्जर	स. प्र., रा. उ. प्रा. वि, प्रथम, काकरोली (उदयपुर)
29. चुन्नीलाल भट्ट	जेठाना (डूंगरपुर)
30. भूपेन्द्र अग्रवाल	रा. शि. प्रा. (महिला) वि., बीकानेर
31. जनकराज पारीक	प्रधा., ज्ञानज्योति उ. मा. वि., श्रीकरणपुर (गंगानगर)
32 प्रकाश नारायण तनिक	रा. उ प्रा वि., जाजोता वाया रूपनगढ़
33. कुमारी खुशाल श्रीवास्तव	पीरामल उ मा वि., बगड़ (झुंझुनूं)
34. भगवतीलाल शर्मा	प्रधा, उ. प्रा. वि., सेमलपुरा (चित्तौड़गढ़)
35 हरीश व्यास	गोपालगंज, प्रतापगढ़ (चित्तौड़गढ़)
36. बी एल अरविंद	रा मा. गांधी उ. मा. वि., रामपुरा, कोटा
37. अर्जुन 'अरविंद'	काली पल्टन रोड, टोंक
38 अखिलेश्वर	30 मंडी ब्लॉक, श्रीकरणपुर (गंगानगर)
39. रमेशचंद्र भट्ट	मोहल्ला नीमघटा, डीग (भरतपुर)
40 रामनिवास सोनी	कालीजी का चौक, लाडनूं (नागौर)
41. अशोक पंत	रा उ. मा वि, भरतपुर
42. मनमोहन झा	प्रधा, रा मा वि., खमेरा (बांसवाड़ा)
43 मोहम्मद सदीक	प्रधा. रा. मा वि., उदासर (बीकानेर)
44 पृथ्वीराज दवे	रा उ प्रा. वि., जीवाणा, वाया बागोड़ा (जालोर)
45 भगवतीप्रसाद गौतम	रा उ मा. वि., भवानीमंडी (झालावाड़)
46 महेशचंद्र वर्मा	रा राजेन्द्र मा. वि, अजमेर
47. मोड़सिंह म्रल्ला	रा. मा. वि, यडा, वाया चमोतर (चित्तौड़गढ़)
48 सोहनलाल प्रजापति	प्रधा. रा उ. प्रा. वि, आवसर, वाया पड़िहारा (चूरू)
48 कैलाश 'मनहर'	स्वामी मोहल्ला, मनोहरपुर (जयपुर)
50 रश्मि गुप्ता	स. अ, रा. उ. प्रा वि., मेनसर, नोखा (बीकानेर)
51 भगवतीलाल व्यास	लोकमान्य शि. प्रशि महाविद्यालय, डबोक (उदयपुर)
52 माधव नागदा	रा. उ. मा. वि, थावण्ड (उदयपुर)
53 निशांत,	द्वारा. हरिकृष्ण सूरजभान, पीलीबंगा (गंगानगर)
54. अरनी रॉबर्ट्स	रा. उ. मा. वि., रामसर, वाया नसीराबाद (अजमेर)
55 अजीज आजाद	मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर
56 देवेन्द्रकुमारी मिश्रा	रा. बालिका मा. वि. रींगस (सीकर)
57 लालचंद सोनी	रा. उ. मा. वि, बारां (कोटा)

□

शिक्षक दिवस प्रकाशन

[सम्पूर्ण सूची]

1967 : 1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3 परिक्षेप (विविधा), 4. सागिर ए गोहर (उर्दू), 5. दार की दावत (उर्दू)

1968 : 6. कैसे भूलूं (संस्मरण), 7. सन्निवेश (विविधा), 8. शामाने बातबां (उर्दू)

1969 : 9. प्रस्तुति–2 (कविता) 10 विम्ब-विम्ब चांदनी (गीत), 11 प्रस्थिति–2 (कहानी), 12 अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14 गांधी-दर्शन और शिक्षा 15 सन्निवेश-दो (विविधा)

1970 : 16 धुला गांव (गीत), 17 खिड़की (कहानी), 18 कैसे भूलूं-दो (संस्मरण), 19 सन्निवेश-तीन (विविधा)

1971 : 20 प्रस्तुति–3 (कविता) 21 प्रस्थिति–3 (कहानी), 22. सन्निवेश-4 (विविधा)

1972 : 23 प्रस्तुति–4 (कविता), 24 प्रस्थिति–4 (कहानी), 25 सन्निवेश–5 (विविधा), 26 माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 : 27. धूप के घमेरू (कविता), 28 खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी), 29. रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30 अस्तित्व की खोज (विविधा), 31. जूनां बेली नुवां बेली (राजस्थानी विविधा)

1974 : 32. रोशनी बांट दो (कविता) स० रामदेव आचार्य, 33 अपने आस-पास (कहानी) स० मणि मधुकर, 34 रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकांकी) स० डा० राजानन्द, 35. गांधी अर आस्था व भगवान महावीर (दो राजस्थानी उपन्यास) स० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36. आरवड़ी (राज० विविधा) स० वेद व्यास

1975 : 37 अपने से बाहर अपने में (कविता) सं० मंगल सक्सेना, 38 एक और अन्तरिक्ष (कहानी) स० डा० नवलकिशोर, 39. संभाळ (राजस्थानी कहानी) स० विजयदान देथा, 40 स्वर्ग-भ्रष्ट (उपन्यास) सं० भगवती प्रसाद व्यास, सं० डा० रामदरश मिश्र, 41. विविधा सं० डा० राजेन्द्र शर्मा

1976 : 42. इस बार (कविता) स० नन्द चतुर्वेदी, 43. सकल्प स्वरों के (कविता) स० हरीश भादानी, 44. बरगद की छाया (कहानी)

स० डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 45 चेहरों के बीच (कहानी व नाटक) स० योगेन्द्र किसलय, 46 माध्यम (विविधा) स० विश्वनाथ सचदेव

1977 47. सृजन के आयाम (निबन्ध) स० डा० देवी प्रसाद गुप्त, 48 पर्दो (कहानी व लघु उपन्यास) स० श्रवण कुमार, 49 चेते रा चितराम (राजस्थानी विविधा) स० डा० नारायण सिंह भाटी, 50. समय के सन्दर्भ (कविता) स० जगमन्दिर तायल, 51 रङ्ग-वितान (नाटक) स० सुधा राजहंस

1978 52 अंधेरे के नाम सन्धि-पत्र नहीं (कहानी सकलन) स० हिमांशु जोशी 53 ललाण (राजस्थानी विविध) स० रावत सारस्वत, 54 रचेगा सगोत (कविता सकलन) स० नन्दकिशोर आचार्य, 55 दो गाँव (उपन्यास) ले० मुकारब खान आजाद स० डा० आदर्श सक्सना, 56. अभिव्यक्ति की तलाश (निबन्ध) स० डा० रामगोपाल गोयल

1979 57 एक कदम आगे (कहानी सकलन) स० ममता कालिया, 58. लगभग जीवन (कविता सकलन) स० लीलाधर जगूडी, 59 जीवन यात्रा का कोलाज/न० ? (हिन्दी विविधा) स० डा० जगदीश जोशी, 60 कोरणी कलम री (राजस्थानी विविधा) स० धन्नाराम सुदामा 61 यह किताब बच्चों की (बाल साहित्य) स० डा० हरिकृष्ण देवसरे

1980 · 62 पानी की लकीर (कविता सकलन) स० अमृता प्रीतम, 63 प्रयास (कहानी सकलन) स० शिवानी, 64 मंजूषा (हिन्दी विविधा) स० राकेश जैन 65 अ तस रा आखर (राजस्थानी विविधा) स० डा० नृसिंह राजपुरोहित, 66 खिलते रहें गुलाब (बाल साहित्य) स० जयप्रकाश भारती

□

शिक्षक दिवस प्रकाशन 1979

⊙ समीक्षकों की नजर में ⊙

यह किताब बच्चों की शिक्षकों द्वारा लिखी गयी रचनाओं का संग्रह है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आज का शिक्षक समाज, बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए उन्हें आधुनिकतम देश प्रेम, सहनशीलता व लगन की शिक्षा देने तथा उन्हें नवीन जीवन के मानदण्डों से जोड़ने के लिए विशेष उत्सुक है।

—नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली), 30 दिस, 79

हम इस संग्रह (एक कदम आगे) में संकलित कहानियों में नयी पीढ़ियों के निर्माण में लगे इन कलाकारों के हृदयों में बैठे साहित्यकार के दर्शन होते हैं। साथ ही शिक्षक समाज के जीवन दर्शन उनकी समस्याओं व कठिनाईयों का भी ज्ञान होता है और सामाजिक असमानता अन्याय व रूढ़ियों के शिकार मध्यम तथा निम्न मध्यम परिवारों की मार्मिक जद्दोजहद का पता भी चलता है।

—नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली), 30 दिस 79

संग्रहीत (लगभग जीवन) रचनाएं मंजिल की तलाश में निकले हुओं की वाणी है, मंजिल पर पहुंचे हुओं की नहीं, फिर भी 'साधारण' कहकर उनके महत्व की अवमानना करना उचित नहीं होगा। परिवेश के प्रति प्रबुद्ध प्रतिक्रिया के नाते संकलन की विभिन्न रचनाओं की एक समान भूमि रही है जिसे सम्पादक ने 'समसामयिक इतिहास का बहुत गहरा दबाव' माना है। अभिनन्दनीय यह है कि इस दबाव का परिणाम रचनाओं की एक स्वरता के रूप में व्यक्त न होकर प्रत्येक कवि के अपने सर्जनात्मक उन्मेष में ढल गया है।

—प्रकर (दिल्ली), अप्रैल, 80

जीवन यात्रा का कोलाज न /? शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए ही नहीं बल्कि समस्त शिक्षा जगत के लिए अलभ्य भेंट है। कोलाज सचमुच अलग अलग कैनवास पर रंग बिरंगे चित्रों में उभारी गयी प्रबुद्ध सजना है।

—योजना (दिल्ली), 21 अप्रैल, 80



अमृता प्रीतम

जन्म : १९१९।

प्रकाशित कृतियां : पचास के लगभग।

अंग्रेज़ी, रूसी, जापानी, चैक, बलगेरियन, उज़बेक, युगोस्लाव, स्लवेनियन आदि विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त, हिन्दी, उर्दू, मलयालम, तमिल, कन्नड, गुजराती, मराठी, बंगाली आदि भारतीय भाषाओं में अनेक रचनाएं अनूदित।

भारत सरकार द्वारा 'पद्म श्री' की उपाधि : १९६९।

दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा 'डी० लिट्०' की उपाधि : १९७३।

आकाशवाणी-सम्मान : १९७८।

बलगेरिया का 'वाप्त्सारोव एवार्ड' : १९७९।

बलगेरिया का 'किरिल-मैतोदियस एवार्ड' : १९८०।